शान्तिनाथ पुराण

भाग-2

निर्ग्रंथ ग्रंथ माला समिति
टूण्डला चौराहा
खुलने का समय 10 से 1 बजे तक
मो0 9219997181

Book No. - 32

I.S.B.N. No. : 81-878280-70

SHRI SHANTINATH PURAN

PART-II

Written by

Kavivar Asag

Edited by

Upadhyaya Muni Nirnaya Sagar

Published by

Nirgranth Granthmala

भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी जी की 2600 वीं जन्म जयन्ती
के पुनीत अवसर पर निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला की नवीन प्रस्तुति

कविवर असग जी विरचित

शान्तिनाथ पुराण

भाग-2

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

संस्करण : प्रथम - सन् 2002
I.S.B.N. No. : 81-878280-70

शान्तिनाथ पुराण-२
कविवर असग जी विरचित

पावन आशीष : राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी महाराज

सम्पादक : उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

सहयोगी :
ऐलक श्री 105 विमुक्त सागर जी
क्षुल्लक श्री 105 विशंक सागर जी

प्रकाशक :
निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

मुद्रक :
अनिल कुमार जैन
चन्द्रा कॉपी हाउस,
होस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.)
✆ 360195, 260938

@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन

मूल्य : स्वाध्याय (लागत मूल्य 20/-)

शास्त्र प्राप्ति स्थान :

❖ 1. चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ0प्र0)
❖ 2. श्री दि0 जैन लाल मंदिर, चाँदनी चौक, नई दिल्ली
❖ 3. अ0 भा0 सम्यग्ज्ञान शिक्षण समिति शाखा हटा, दमोह (म0प्र0)
❖ 4. धर्म जागृति संगठन व महावीर संगठन, फिरोजाबाद (उ0प्र0)
❖ 5. वास्ट जैन फाउन्डेशन, 59/2 बिरहाना रोड, कानपुर (उ0प्र0)

सत्यमेव जयते

विशेष कार्य अधिकारी
OFFICER ON SPECIAL DUTY

राष्ट्रपति सचिवालय,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली-110004,

President's Secretariat,
Rashtrapati Bhavan,
New Delhi-110004.

सं : 8 एम.एच/2001

दिनांक : 08 जनवरी, 2002

प्रिय श्री जैन जी,

भारत के राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन् जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि भगवान महावीर स्वामी की 2600वीं जयंती के अवसर पर पूर्व दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत व उपाध्याय श्री निर्णय सागर जी महाराज द्वारा सम्पादित एवं रचित 26 धार्मिक ग्रंथों का प्रकाशन आरम्भ किया जा रहा है।

राष्ट्रपति जी इन प्रकाशनों की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करते हैं।

सादर,

आपका,

(प्रेम प्रकाश कौशिक)

श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन,
मंत्री,
श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर,
एन-10, ग्रीन पार्क एक्स.,
नई दिल्ली-110016

उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर द्वारा रचित एवं सम्पादित ग्रंथावली

सुकुमाल चरित्र
चारुदत्त चरित्र
गौतम स्वामी चरित्र
महीपाल चरित्र
जैन व्रत कथा संग्रह
धन्य कुमार चरित्र
सुलोचना चरित्र
सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
जिन दत्त चरित्र
कुरल-काव्य
पुराण सार संग्रह - 1
पुराण सार संग्रह - 2
चेलना चरित्र
रयणसार
आहार दान
जिन श्रमण भारती
धर्म संस्कार भाग-1
सदार्चन सुमन
तनाव से मुक्ति
धम्म रसायणं
अराधना कथाकोश-1,2,3
तत्वार्थ सार
योगामृत
सार समुच्चय

महापुराण-1
महापुराण-2
चित्रसेन पद्मावती चरित्र
श्री राम चरित्र
अमरसेण चरिउ
नागकुमार चरित्र
सर्वोदयी नैतिक धर्म
पुण्यास्रव कथाकोष भाग-1
पुण्यास्रव कथाकोष भाग-2
करकंड चरित्र

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

यदि यह शास्त्र आपको अच्छा लगे तो आप सभी को पढ़ायें। उत्सव, व्रत, त्यौहार, जन्म दिवस, पुण्य स्मृति के उपलक्ष्य में बाँटने एवं छापने योग्य समझें तो लागत मूल्य पर छपवाइये। ट्रस्ट -न्यास- फाउंडेशन आदि द्वारा छपवाना चाहते हो तो उनके नाम, चित्र, परिचय सहित छपवा सकते हैं।

प्रकाशक

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्तहै, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्तहोता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं–

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं॥17॥द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्तिप्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अतः जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं –

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा ॥ (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति रत्नत्रय में अनुरक्तिकी भावना जागृत होती हैं। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोग मर्थाख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥ र. श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय – सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि– निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना हैं ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्तिनहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते ही हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भाववुक्तउन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अतः यथाशक्तिनित्य विनय पूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही हैं। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

''अलमति विस्तरेण''

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः
जिन चरण चञ्चरीक
टूंडला (3.12.2000)

ooo

तीर्थंकर भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी जी का

जीवन परिचय

नाम	:	श्री महावीर स्वामी
माता का नाम	:	प्रियंकारिणी/त्रिशला
पिता का नाम	:	श्री सिद्धार्थ
चिन्ह	:	सिंह
आयु	:	72 वर्ष
अवगाहना	:	7 हाथ
गर्भ तिथि	:	आषाढ़ शु. 6
जन्म तिथि	:	चैत्र शु. 13
दीक्षा तिथि	:	मार्ग कृष्ण 10
केवलज्ञान तिथि	:	वै. शु. 10
निर्वाण तिथि	:	कार्तिक कृ. 15
यक्ष	:	गुह्यक
यक्षिणी	:	सिद्धायिनी
वैराग्य का कारण	:	जातिस्मरण
दीक्षा वन	:	नाथ
दीक्षा वृक्ष	:	साल
सहदीक्षित	:	एकाकी
छदमस्थ काल	:	12 वर्ष
कुल गणधर	:	11
मुख्य गणधर	:	इन्द्रभूति
मुख्य श्रोता	:	श्रेणिक
मुख्य आर्यिका	:	चन्दना
प्रथम आहार दाता	:	चन्दना
सर्व ऋषि	:	14000
सर्व आर्यिका	:	36000/35000
श्रावक	:	1,00,000
श्राविका	:	3,00,000
केवली काल	:	30 वर्ष
तीर्थकाल	:	21042 वर्ष
वंश	:	नाथ
देवगति से पूर्व भव का नाम	:	नन्द/सुनन्द/नन्दन

भगवान महावीर स्वामी और उनके सिद्धान्त

भगवान महावीर स्वामी जैन धर्म के चौबीसवें/अंतिम तीर्थंकर थे, किंतु जैन ऐतिहासिक परम्परानुसार वे जैन धर्म के न तो आदि प्रवर्तक थे और न ही सदा के लिए अंतिम तीर्थंकर। जैन धर्म की स्थापना किसी व्यक्ति विशेष के माध्यम से नहीं हुई क्योंकि यह जैन धर्म 'वस्तु के स्वभाव को ही धर्म कहता है'। संसार में विद्यमान समस्त पदार्थ अनादि निधन हैं यह सृष्टि भी अनादि-निधन है अतः पदार्थों का कभी अभाव नहीं होता। यथा जल का स्वभाव शीतलता व अग्नि का स्वभाव उष्णता है। ये स्वभाव अनादि-निधन हैं। इन्द्रिय व कर्म विजेता जिनधर्म प्रवर्तक जिनेन्द्र भगवान व तीर्थंकर अनादि काल से होते आ रहे हैं और अनंत काल तक होते रहेंगे। तीर्थंकर महापुरुषों द्वारा उपदिष्ट धर्म में अपने अपने युग के अनुसार विशेषताएँ भी रहती हैं और उनके मौलिक स्वरूप में तालमेल भी बना रहता है।

वर्तमान युग में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए, जिनका वर्णन न केवल जैन पुराणों में अनिवार्यतः आता है, अपितु भारत के प्राचीन ग्रंथों ऋग्वेद आदि में भी बाहुल्यतः मिलता है। यथा-ऋग्वेद के 10 वें पर्व की 102 व 10 वीं ऋचा में, इसी पर्व की 136, 166, 233 ऋचाओं में; इसके अतिरिक्त भाग 0 पुराण 5, 6 में व विष्णु पुराण के 3, 18 में भी वृषभनाथ के केशी, वातरसना, ऋषभनाथ आदि नाम ध्यान देने योग्य हैं।

उन वृषभदेव से लेकर महावीर भगवान पर्यंत 24 तीर्थंकरों के चरित्र का विधिवत् वर्णन जैन पुराणों में है।

धार्मिक, सैद्धान्तिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, आगमिक दृष्टियों से उनमें एक रूपता तथा एक आत्मा की व्याप्ति प्रकट करने के लिए महावीर स्वामी के पूर्व जन्म की परम्परा भगवान वृषभदेव से जुड़ी हुई है।

पुरुरवा भील से मारीचि तक

पुरुरवा भील जिसने जंगल में शिकार करते समय 'सागरसेन' मुनिराज के दर्शन करने मात्र से कौए के मांस का त्याग किया था। इस नियम का उसने विषम परिस्थितियों में भी पालन किया। वही पुरुरवा भील मृत्यु के उपरांत सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। वहां से प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती (जिसके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा) का पुत्र मारीचि कुमार हुआ। 'भरत चक्रवर्ती के नाम से इस देश का नाम भारत पड़ा' यह कथन वैदिक पुराणों में भी एक मत से स्वीकार किया गया है यथा-

भागवत पुराण	5, 4, 9, 11, 2
विष्णु पुराण	2, 1, 31,
वायु पुराण	33,52
अग्नि पुराण	107,11,12
ब्रह्माण्ड पुराण	14,5,62

लिंग पुराण	1,47,23
स्कन्द कुमार खण्ड	37,57
मार्कण्डय पुराण	50, 41

इत्यादि पुराणों आदि में उपरोक्त कथन का स्पष्टत: उल्लेख है।

मारीचि से सिंह पर्याय तक

मारीचि ने वृषभदेव के चरणों में जिनदीक्षा अंगीकार कर ली, किंतु वह आदि तीर्थंकर द्वारा निर्दिष्ट कठोर मुनिव्रतों का पालन नहीं कर सका अत: वह मुनि पद से भ्रष्ट हो गया मात्र अल्प काल ही मुनि रहा। इस पद से भ्रष्ट होने के बावजूद भी उसमें धर्म का बीजारोपण तो हो ही चुका था अतएव वह परिव्राजक साधु बन गया। भगवान वृषभदेव से अपने बारे में 'यह तीर्थंकर होगा' यह सुनकर अहंकार से जिनमत को छोड़कर 363 मिथ्यामतों की स्थापना करने वाला हुआ। दुर्धर कुतप करने से एवं अज्ञानतापूर्वक चारित्र का परिपालन करने से वह देव हुआ। पुन: अनेक बार देव, मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी पर्याय में मारीचि ने भ्रमण किया। असंख्यात् भवों को धारण कर कुछ कम एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम काल तक उसने परिभ्रमण किया।

अन्यत्र यह लिखा है कि सौधर्म स्वर्ग से आकर अग्निसह ब्राह्मण हुआ। पुन: स्वर्ग गया। वहां से च्युत होकर अग्निमित्र परिव्राजक बना। पश्चात् माहेन्द्र स्वर्ग गया वहां से च्युत हो भारद्वाज ब्राह्मण हुआ। पुन: परिव्राजक बन कर माहेन्द्र स्वर्ग गया वहां से निकलकर उसने तिर्यञ्च गति में व अधोगति में परिभ्रमण किया पुन: मारीचि का जीव सागरोपम काल के लिये इतर निगोद गया इसके अनन्तर उसने इन भवों को धारण किया-

1000 (एक हजार)	आक के वृक्ष के भव
80,000 (अस्सी हजार)	सीप के भव
20,000 (बीस हजार)	नीम के भव
90,000 (नब्बे हजार)	केलि के भव
3,000 (तीन हजार)	चन्दन के भव
5,00,00,000 (पांच करोड़)	कनेर के भव
60,000 (साठ हजार)	वेश्या के भव
5,00,00,000 (पांच करोड़)	शिकारी के भव
20,00,00,000 (बीस करोड़)	हाथी के भव
60,00,00,000 (साठ करोड़)	गधा के भव
30,00,00,000 (तीस करोड़)	श्वान के भव
20,00,00,000 (बीस करोड़)	नारी के भव
8,00,00,000 (आठ करोड़)	घोड़ा के भव
20,00,00,000 (बीस करोड़)	बिल्ली के भव

80,00,000 (अस्सी लाख)	देव पद के भव
60,00,000 (साठ लाख)	नपुंसक के भव
90,00,000 (नब्बे लाख)	धोबी के भव
60,00,000 (साठ लाख)	अकाल मरण, गर्भपात के भव
50,000 (पचास हजार)	राजा के भव

अनेक भव सुपात्र को दान देने से भोगभूमि के व कुपात्र को दान देने से कुभोग भूमि के प्राप्त किये।

तदनन्तर जम्बुद्वीप के भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड के मगध देश के राजगृह नगर में वेद पारंगत शांडिल्य ब्राह्मण की पाराशरी ब्राह्मणी से 'स्थावर' नामक पुत्र हुआ। पुनः वेद पारंगत होकर परिव्राजक बन माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु का धारक देव हुआ। वहां से चयकर इसी राजगृह नगर में विश्वभूति नामक राजा की जैनी नामक रानी से विश्वनंदी नामक पुत्र हुआ। इसी विश्वभूति राजा का भाई विशाखभूति था। एक दिन अपने विश्वभूति राजा विरक्त हो अपने छोटे भाई को राज्य पद व अपने पुत्र को युवराज पद देकर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर कठिन तप करने लगा।

किसी दिन विश्वनंदी युवराज के मनोहर नामक बगीचे को देखकर चाचा के पुत्र विशाखनंदी ने अपने पिता से उसकी याचना की। विशाखभूति राजा ने भी मायाचारी से विश्वनंदी को शत्रुओं पर आक्रमण के लिए भेजकर वह उद्यान अपने पुत्र के लिए दे दिया। विश्वनंदी को इस बात का पता लगाते ही उसने वापिस आकर विशाखनन्दी को पराजित कर दिया और उसको भयभीत देख विरक्त होकर उसको उद्यान सौंप कर आप स्वयं दैगम्बरी दीक्षा लेकर तप करने लगा।

घोर तपश्चरण करते हुए अत्यन्त कृश शरीरधारी विश्वनंदी मुनिराज एक दिन मथुरा नगरी में आहार के लिए आये। व्यसनों से भ्रष्ट यह विशाखनन्दी उस समय किसी राजा का दूत बनकर वहां आया हुआ था और एक वेश्या के भवन की छत पर बैठा मुनि को देख रहा था। दैवयोग से वहां एक गाय ने मुनिराज को धक्का देकर गिरा दिया। उन्हें गिरता देख क्रोधित हुआ विशाखनंदी बोला कि 'तुम्हारा पराक्रम हमें मारने को पत्थर का खम्भा तोड़ते समय देखा गया था वह आज कहां गया? इस प्रकार खोटे वाक्यों को सुनकर मुनिराज के मन में भी क्रोध आ गया और बोले कि इस हंसी का फल तुझे अवश्य मिलेगा। और अंत में निदान सहित सन्यास से मरण कर मुनिराज महाशुक्र स्वर्ग में देव हुए और विशाखभूति राजा (चाचा) का जीव भी वहां पर तप पूर्वक मरण करके देव हुआ। चिरकाल तक सुख भोगकर वे दोनों वहां से च्युत होकर सुरम्य देश के पौदनपुर नगर में प्रजापति महाराज की जयावती रानी से विशाखभूति का जीव 'विजय' नामक बलभद्र पदवी धारक पुत्र हुआ और उन्हीं की दूसरी मृगावती रानी से विश्वनंदी का जीव नारायण पद धारक त्रिपृष्ठ नामक पुत्र हुआ एवं विशाखनंदी का जीव चिरकाल तक संसार में परिभ्रमण कर विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के उलकापुर नगर में मयूरग्रीव विद्याधर की नीलाञ्जना रानी

से अश्वग्रीव का नाम प्रतिनारायण पद का धारक पुत्र हुआ। पूर्व जन्म के संस्कार से त्रिपृष्ठ नारायण ने अश्वग्रीव प्रतिनारायण को मारकर चक्र रत्न प्राप्त किया। चिरकाल तक राज्य सुख को भोगकर अंत में भोगासक्ति से मरकर सांतवें नरक को प्राप्त किया। वहां के दुखों को सागरों पर्यंत सहकर उसी भरत क्षेत्र की गंगा नदी के तट के समीपवर्ती वन में सिंहगिरि पर्वत पर सिंह हुआ, वहां भी तीव्र पाप से पुनः प्रथम नरक को प्राप्त किया। वहां एक सागर तक दुख भोग कर जम्बूद्वीप में सिंहकूट की पूर्व दिशा में हिमवन पर्वत के शिखर पर सिंह हो गया।

सिंह का उत्थान

किसी समय यह सिंह किसी हरिण को पकड़ कर खा रहा था। उसी समय अतिशय दयालु 'अजितंजय' नामक चारण मुनि अमितगुण नामक चारणमुनि के साथ आकाश में जा रहे थे। उन्होंने उस सिंह को देखा, देखते ही वे तीर्थंकर के वचनों का स्मरण कर दयावश आकाशमार्ग से उतरकर उस सिंह के पास पहुंचे और शिलातल पर बैठकर उच्च स्वर से सम्बोधन कर धर्ममय वचन कहने लगे। उन्होंने कहा कि हे मृगराज! तूने पहले त्रिपृष्ठ नारायण के भव में इन्द्रियों में आसक्त होकर मरकर नरक पर्याय प्राप्त की। वहां के दुख भोगकर वहां से निकलकर सिंह पर्याय पाकर क्रूरकर्मी होकर पुनः नरक गया अब वहां से निकलकर पुनरपि सिंह पर्याय को प्राप्त हुआ है। अरे मृगराज !

अब इस भव से तू दशवें भव में अन्तिम तीर्थंकर होगा। यह सब मैंने श्रीधर तीर्थंकर के मुख से सुना है। हे बुद्धिमान! अब तू आज से संसार रूपी अटवी में गिराने वाले मिथ्यामार्ग से विरत हो और आत्मा का हित करने वाले मार्ग में रमण कर।

इस प्रकार उस सिंह ने मुनिराज के वचन हृदय में धारण किये तथा उन दोनों मुनिराजों की भक्ति के भार से नम्र होकर बार-बार प्रदक्षिणाएं दीं बार-बार प्रणाम किया। शुभ निमित्त के मिल जाने से शीघ्र ही तत्व श्रद्धान धारण किया और मन स्थिर कर श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये।

इस प्रकार संयमासंयम के व्रतों का पालन करते हुए सिंह अन्त में सन्यास धारण करके एकाग्रचित्त से मरा अंत में सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नामक देव हुआ। वहां दो सागर तक सुखों को भोग कर वहां से च्युत होकर धातकीखंड के पूर्व विदेह की मंगलावती देश के विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के कनकमाला नगर के राजा कनकपुंख विद्याधर और कनकमाला रानी के गर्भ से कनकोज्ज्वल नामक पुत्र हुआ। किसी समय मंदर पर्वत पर 'प्रियमित्र' मुनिराज से दीक्षा लेकर अंत में समाधि से मरणकर सांतवे स्वर्ग में देव हुआ। वहां से च्युत होकर इसी अयोध्या नगरी के राजा वज्रसेन की शीलवती रानी से हरिषेण नामका पुत्र हुआ। पुनः राज्य भार को छोड़कर श्रुतसागर मुनि से दीक्षा लेकर आयु के अंत में महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ। वहां से च्युत होकर धातकीखंड के पूर्व विदेह की पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र और उनकी मनोरमा रानी से प्रियमित्र पुत्र हुआ। इस प्रियमित्र ने चक्रवर्ती के वैभव को प्राप्त किया था।

अनन्तर क्षेमंकर तीर्थंकर से दीक्षा लेकर आयु के अंत में सहस्रार स्वर्ग में देव सुख का अनुभव कर जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर में नन्दिवर्धन महाराजा की वीरवती महारानी से नन्द नामक पुत्र हुआ। यहां पर भी अभिलक्षित राज्य सुख को भोग कर प्रोष्ठिल नाम के गुरु के पास दीक्षा लेकर उग्र तपश्चरण करते हुए ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चिंतवन कर तीर्थंकर नमकर्म का बंध किया। आयु के अंत में सब प्रकार की आराधनाओं को प्राप्त कर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में श्रेष्ठ इन्द्र हुआ।

जब इस इन्द्र की आयु 6 महीने शेष थी तब इस भरत क्षेत्र के विदेह नामक देश सम्बन्धी कुण्डलपुर नगर के राजा सिद्धार्थ के भवन के आंगन में इन्द्र की आज्ञा से कुबेर के द्वारा की गयी प्रतिदिन साढ़े दश करोड़ या चौदह करोड़ रत्नों की मोटी धारा बरसने लगी।

श्री शुभमिती आषाढ़ शुक्ला षष्ठी, शुक्रवार 17 जून ईसवी सन् से 599 वर्ष पूर्व की रात्रि के पिछले प्रहर में सिद्धार्थ महाराज की रानी प्रियकारिणी ने सोलह स्वप्न देखे एवं प्रभात में अपने पतिदेव से उन स्वप्नों का फल सुनकर सन्तोष प्राप्त किया। अनन्तर देवों ने आकर भगवान का गर्भ कल्याणक उत्सव मनाते हुए माता-पिता की विधिवत् पूजा की। अर्थात् माता त्रिशला के गर्भ में अच्युतेन्द्र का जीव आ गया।

जन्म कल्याणक

नव मास व्यतीत होने पर चैत्र सुदी 13 सोमवार 27 मार्च ईसवी सन् से 598 वर्ष पूर्व माँ त्रिशला ने तीर्थंकर बालक को जन्म दिया। उनके जन्म से तीनों लोको में क्षण भर के लिए शांति की लहर छा गई। उनके जन्म से सर्वत्र सुख शांति, धर्म, लक्ष्मी, यश आदि की वृद्धि हुई थी। इसलिये उनका नाम वर्धमान रखा गया। सौधर्म इन्द्र ने मेरु पर्वत की पांडुक शिला पर असंख्यात देव समूह के साथ उन भगवान बालक का अभिषेक किया।

संजयंत व विजयंत नामक मुनिराजों का संशय उनको देखने मात्र से दूर हो गयाथा। अतः उन्होंने उनको 'सन्मति' कहकर सम्बोधित किया। बाल्यावस्था में ही संगम देव द्वारा ली गई परीक्षा में वे सफल हुए। संगम देव इनकी शक्ति व निर्भयता देखकर दंग रह गया, उसने नम्रीभूत होकर उनकी 'महावीर' नाम से स्तुति की।

भगवान महावीर पांचवे बालयति तीर्थंकर थे। इनके पूर्व वासुपूज्य भगवान, मल्लिनाथ भगवान, नेमिनाथ भगवान, पार्श्वनाथ भी बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर थे। इन्होंने स्वेच्छा से शादी नहीं रचायी। सकल विषय वासनाओं को जीतकर तीस वर्ष की वय में इन्होंने मंगसिर वदी 10 सोमवार 20 दिसम्बर सन् ईसवी सन् से 569 वर्ष पूर्व में दिगम्बर जिन दीक्षा ग्रहण की।

बारस वर्ष की कठोरतम मौन व्रत एवं संयम साधना व आत्म ध्यान के फल स्वरूप जृम्भिका ग्राम के समीप, ऋजुकूला नदी के किनारे मनोहर नामक वन में भगवान महावीर स्वामी को वैशाख सुदी 10 रविवार 26 अप्रैल ईसवी सन् से 537 वर्ष पूर्व को चार घातिया कर्मों को

क्षय कर केवलज्ञान को प्राप्त किया। योग्य श्रोता/ गणधर के अभाव में भगवान की दिव्यध्वनि 66 दिन तक नहीं खिरी। अर्थात् धर्मोपदेश नहीं हुआ। महावीर स्वामी का प्रथम धर्मोपदेश श्रावण कृष्णा 1, वीर शासन जयंती 1-1-1 को अथवा ईसवी सन् से 557 वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ था।

30 वर्ष तक भगवान महावीर स्वामी ने केवली अवस्था में अनेकों देशों में विहार कर धर्म का उपदेश भव्य जीवों को दिया। उनके समवशरण में असख्यात देव देवियां, लाखों मनुष्यों/श्रावकों व लाखों श्राविकाएं, हजारों दिगम्बर मुनि व हजारों साध्वीयां/आर्यिका माताएं थीं। प्राणी मात्र को कल्याण का उपदेश देने वाले भगवान महावीर स्वामी ने लगभग 72 वर्ष की उम्र में शेष चार अघातिया कर्मों को भी क्षय करके कार्तिक वदी 14 की रात्रि के अंतिम पहर या कार्तिक वदी अमावस्या के प्रातः काल मंगलवार 15 अक्टूबर ईसवी सन् से 527 वर्ष पूर्व को मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित/प्रचारित सिद्धान्तों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम ज्ञेय सिद्धान्त, द्वितीय आचरणीय सिद्धान्त।

I. ज्ञेय सिद्धान्त

अर्थात् जानने योग्य सिद्धान्त। वस्तु तत्व को यथार्थ रूप से समझने के लिए जिनमत के रहस्य मयी सूत्रों को आत्मसात करने के लिए, आत्मा को परमात्मा बनाने की कला सीखने के लिए, विश्व के प्रत्येक प्राणी की मनोभावना व वाच्य सिद्धांतो को समझने के लिए भगवान महावीर स्वामी के ज्ञेय सिद्धान्तों को जानना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। उन ज्ञेय सिद्धान्तों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है-प्रथम अनेकान्तात्मक सिद्धान्त या अनेकान्तवाद, द्वितीय स्याद्वाद।

1. अनेकान्तवाद

प्रत्येक द्रव्य में अनन्त धर्म विद्यमान हैं या प्रत्येक द्रव्य में अनेक गुण, स्वभाव या लक्षण पाये जाते हैं। अनेकान्त का शब्दिक अर्थ है-अनेक है अंत जिसके, अर्थात् जिसमें अनन्त धर्म हैं। अनेकान्तात्मक दृष्टि से वस्तु तत्व को जानने वाला वाद ही अनेकान्त वाद है। यथा-राम एक होते हुए भी अनन्त धर्मा हैं, उनमें पितृत्व, पुत्रत्व, भ्रातृत्व, पतित्व, पौत्रत्व, प्रपौत्रत्व, पितामहत्व, प्रपितामहत्व, मानवता, जीवन्त, भव्यत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व, अनेकत्व, भेदत्व, अभेदत्व इत्यादि धर्म हैं। इन परस्पर विरोधी सर्व धर्मों को बिना विरोध के जो ग्रहण करता है वही अनेकान्त वाद है।

2. स्याद्वाद

श्री महावीर प्रभु का वस्तु तत्व को जानने वाला दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है-स्याद्वाद। यह शब्द दो शब्दों के मेल से बना है-पहला शब्द है-स्याद व दूसरा शब्द है-वाद। इनमें 'स्याद' का

संत दर्शन के दुर्लभ क्षण.....

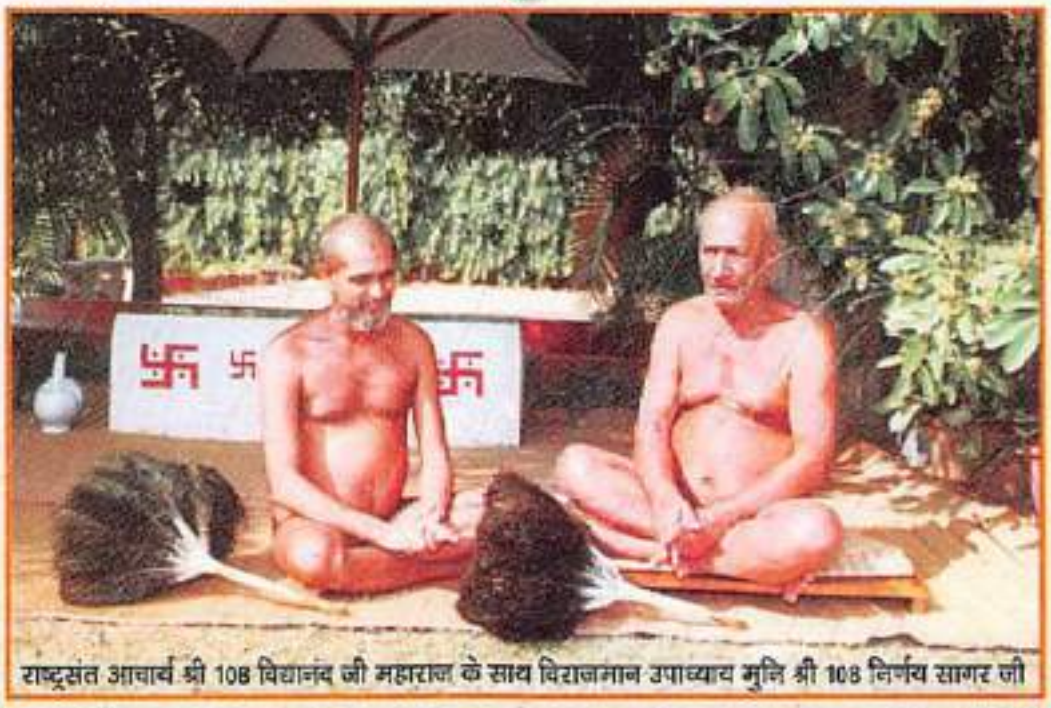

राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानंद जी महाराज के साथ विराजमान उपाध्याय मुनि श्री 108 निर्णय सागर जी

ऐलक श्री एवं क्षु.श्री की शंकाओं का समाधान करते हुये उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर जी

स्वाध्यायरत ऐलक श्री विमुक्त सागर जी

स्वाध्यायरत क्षु.श्री विशंक सागर जी

आयें चलें संत दर्शन को.....

राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानंद जी महाराज के साथ विराजमान उपाध्याय मुनि श्री 108 निर्णय सागर जी

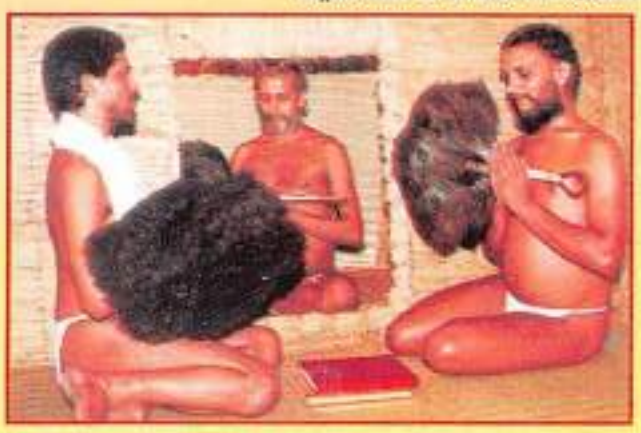

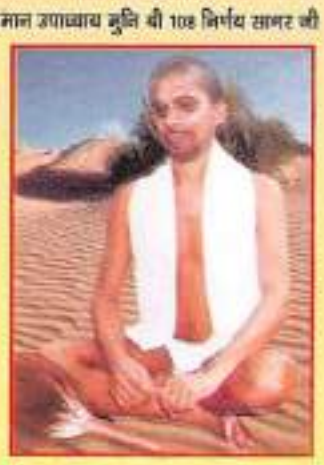

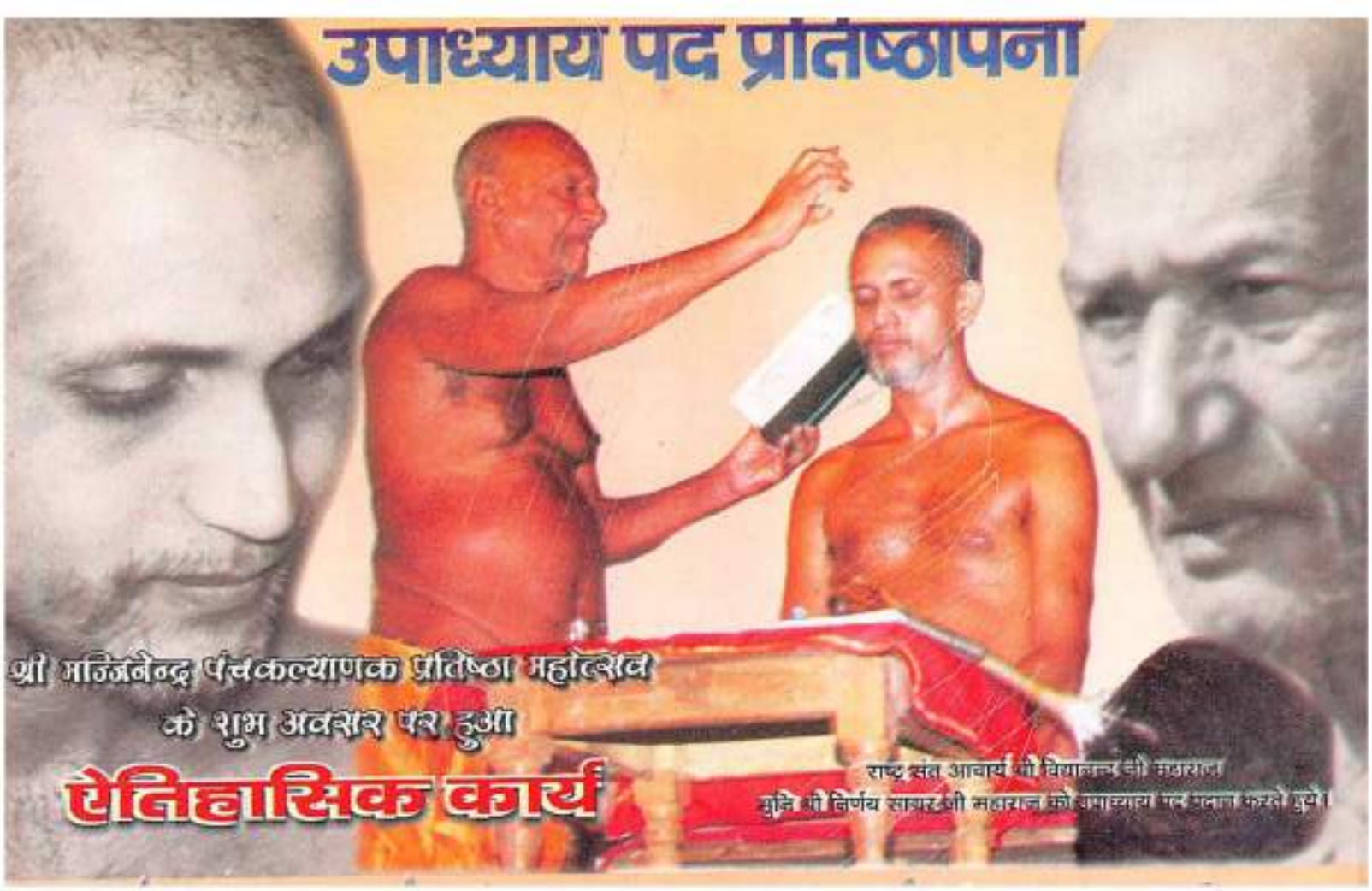
उपाध्याय पद प्रतिष्ठापना
श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
के शुभ अवसर पर हुआ
ऐतिहासिक कार्य

उपाध्याय पद

श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

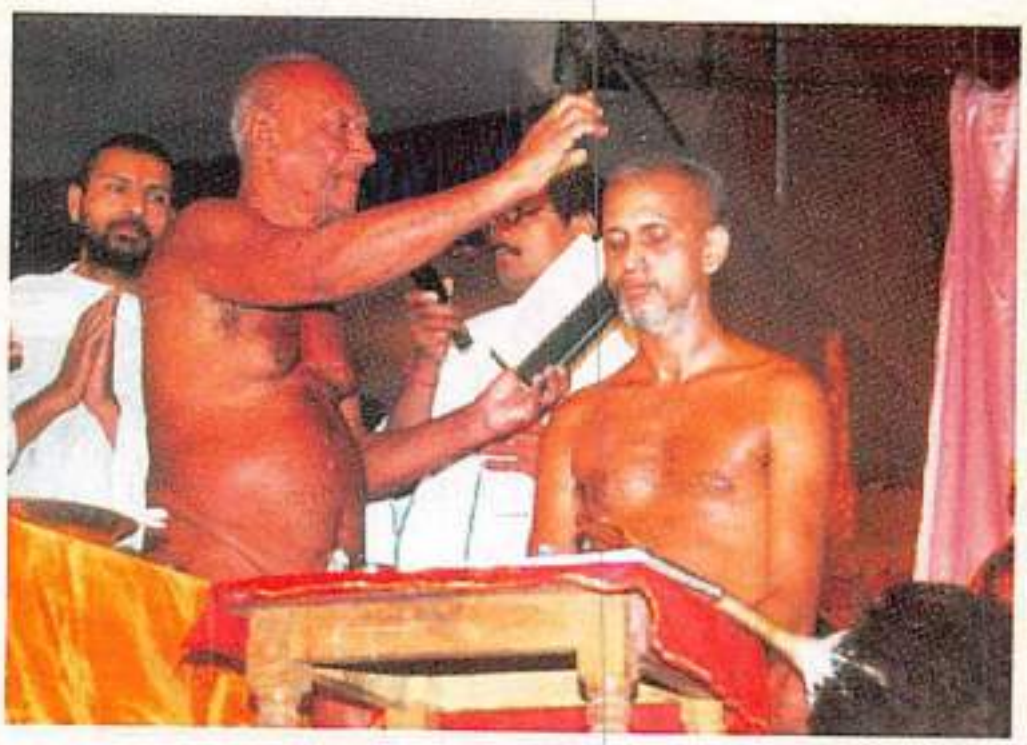

रचा गया इतिहास.....

.....दिन था रविवार 17 फरवरी 2002 का जब आरम्भ था ऐसे उत्सव का जिसमें एक पत्थर की मूरत को परम पूज्य परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है परन्तु इस उत्सव को महोत्सव बनाया एक ऐसे प्रशस्त कार्य ने जिसे इतिहास सदियों तक भुला नहीं पायेगा। क्योंकि यहां पत्थर की मूरत को ही नहीं एक ऐसी मूरत को जिसमें सौम्यता और दिव्यता के दर्श होते हैं और जो साक्षात परमेष्ठी हैं ऐसे मुनिराज श्री निर्णय सागर जी महाराज को राष्ट्रसंत, आध्यात्म रसिक योगी, सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य श्री 108 विद्यानंद जी महाराज ने

उपाध्याय पद प्रतिष्ठापना

के निर्मल संस्कारों से संस्कारित किया।

प्रतिष्ठापना

के शुभ अवसर पर हुआ ऐतिहासिक कार्य

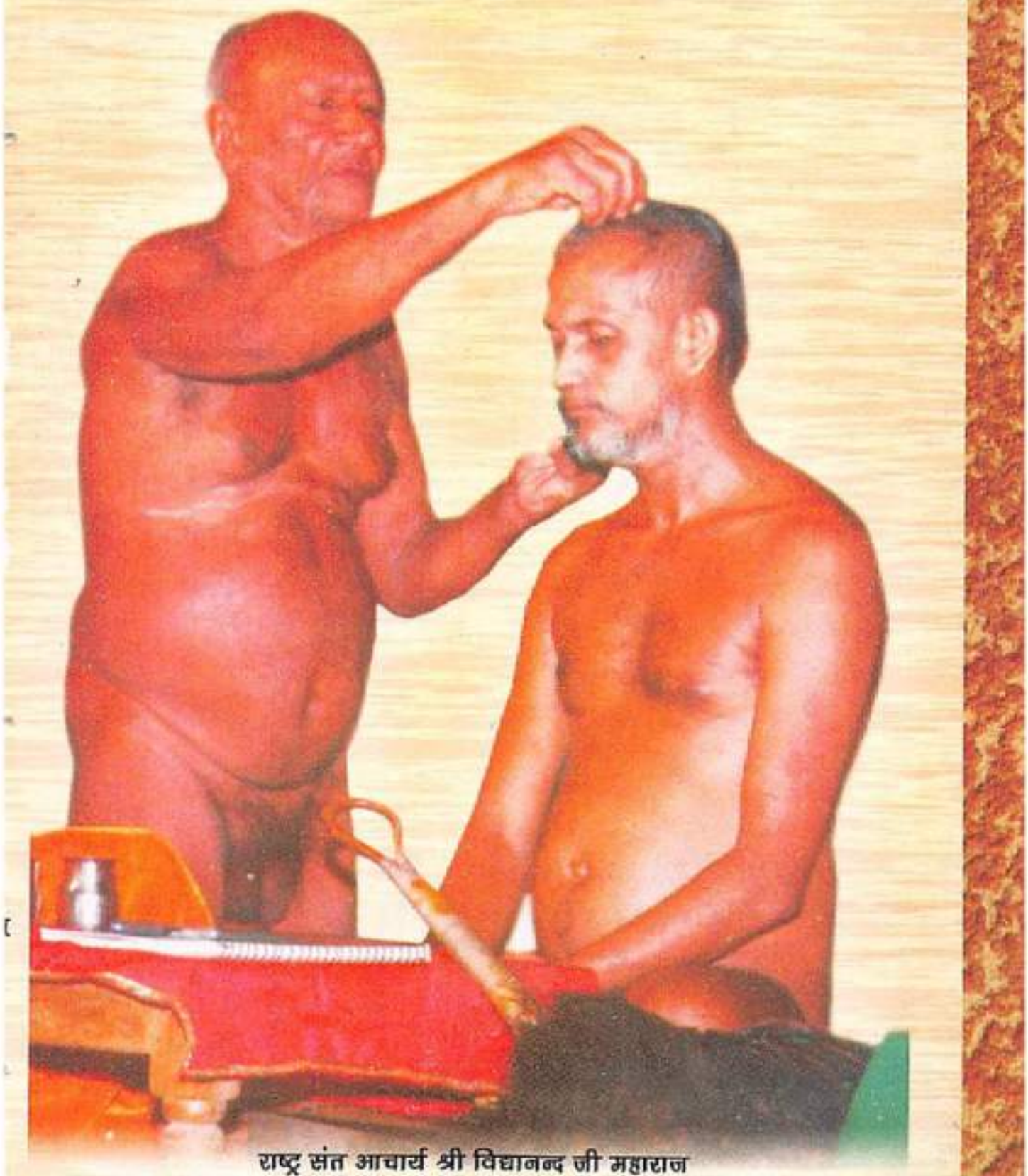

राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज
मुनि श्री निर्णय सागर जी महाराज को उपाध्याय पद प्रदान करते हुये।

रचा गया इतिहास.....

.....दिन था रविवार 17 फरवरी 2002 का जब आरम्भ था
ऐसे उत्सव का जिसमें एक पत्थर की मूरत को परम पूज्य परमात्मा के
रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है परन्तु इस उत्सव को महोत्सव बनाया
एक ऐसे प्रशस्त कार्य ने जिसे इतिहास सदियों तक भुला नहीं पायेगा।
क्योंकि यहां पत्थर की मूरत को ही नहीं अपितु उस मूरत को
जिसमें सौम्यता और दिव्यता के दर्शन होते हैं और जो साक्षात
परमेष्ठी हैं ऐसे मुनिराज श्री निर्णय सागर जी महाराज को
राष्ट्रसंत, आध्यात्म रसिक योगी, सिद्धांत चक्रवर्ती
आचार्य श्री 108 विद्यानंद जी महाराज ने
उपाध्याय पद प्रतिष्ठापना
के निर्मल संस्कारों से संस्कारित किया।

उपाध्याय श्री निर्णय सागर जी द्वारा रचित एवं संपादित साहित्य की एक झलक
भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी के 2600 वें
जन्म कल्याणक महोत्सव एवं अहिंसा वर्ष के पुनीत अवसर पर
राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज के आशीर्वाद एवं
उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर जी महाराज की प्रेरणा व प्रयासों से
निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला
श्रुत संरक्षण एवं संवर्धन में सार्थक प्रयास
प्रथमानुयोग के ग्रंथों की पुनः नई श्रंखला
पूज्य आचार्य भगवंतो की अमृतमयी वाणी जो समय के साथ कही खो गयी है
उसे जन जन तक पहुँचाने की दिशा मे अभूतपूर्व कदम
निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला
उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर जी महाराज

भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी के 2600 वें जन्म कल्याणक महोत्सव एवं अहिंसा वर्ष के पुनीत अवसर पर

राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज के आशीर्वाद एवं
उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर जी महाराज की प्रेरणा व प्रयास से

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

प्रथमानुयोग के ग्रंथों की पुनः नई श्रंखला

पूज्य आचार्य भगवंतो की अमृतमयी वाणी
जो समय के साथ कहीं खो गयी है
उसकी अद्भुत खोज एवं प्रकाशन
अनुपलब्ध ग्रंथों की खोज में सार्थक प्रयास

उपाध्याय श्री निर्णय सागर जी द्वारा रचित एवं संपादित साहित्य की एक झलक

प्राप्ति स्थानः- चन्द्रा कापी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा

अर्थ कथञ्चित् है तथा 'वाद' शब्द का अर्थ कथन, वचन, वक्तव्य है। स्याद्वाद का अर्थ हुआ कि कथञ्चित् किसी बात को स्वीकार करना। द्रव्य में विद्यमान अनंत धर्मों का कथन एक साथ संभव नहीं है तथा वे धर्म परस्पर विरोधी भी हो सकते हैं। इन विरोधी धर्मों को भी जो कथंचित् (किसी अपेक्षा से यह भी सत्य है) सत्य कहता है वही है स्याद्वाद। स्याद्वाद समस्त विवादों को निबटाने व वस्तु तत्व का यथार्थ बोध कराने वाला अनुपम हेतु है।

II. भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित आचरणीय सिद्धान्त-

आचरण ही किसी धर्म की अंतर्चेतना हो सकती है, बिना आचरण के धर्म मुर्दा शरीर के बराबर है मुख्य रूप से भगवान महावीर स्वामी द्वारा उद्घोषित पांच सिद्धान्त सूत्र हैं। इनमें भी आत्म कल्याण व शांति का रहस्य छिपा हुआ है।

1. अहिंसा व्रत

मन, वचन, काय से किसी जीव को कष्ट नहीं पहुंचाना, न कष्ट देने हेतु किसी को प्रेरित करना, किसी हिंसा करने वाले की अनुमोदना न करना अहिंसा का स्थूल स्वरूप है। यथार्थता में तो किसी जीव के प्रति हिंसा के परिणाम भी न होना अथवा किसी भी पर पदार्थ के प्रति हिंसा के परिणाम भी न होना अथवा किसी पदार्थ के प्रति राग द्वेष का नहीं होना, अपनी आत्मा में लीन रहना ही परम अहिंसा है। इस अहिंसा की ही पूर्णता के लिए शेष चार सिद्धान्त रक्षा कवच की तरह हैं। यह अहिंसा ही जगज्जननी है, प्राणी मात्र का प्राणों से प्रिय धर्म है, यह आत्म-स्वभाव है, लक्षण है, धर्म है ,नियति है, चरम साध्य लक्ष्य है।

2. सत्य व्रत

मन, वचन, काय से सम्पूर्ण असत्य का त्याग करना, न वचन से असत्य बोलना, न शरीर से असद् चेष्टा करना और न ही मन में असद् विचार करना। असत्य के लिए प्रेरित करना तथा असत्यवादी असत्यार्थी असत्यासक्त की प्रशंसा नहीं करना, उसकी क्रिया की अनुमोदना नहीं करना, उसकी चेष्टाओं से सहमत नहीं होना ही सत्य व्रत है। पर भावों का सर्वथा त्याग कर निजात्मा में लीनता ही निश्चय से सत्य व्रत है।

3. अचौर्य व्रत

किसी की भूली हुई, पड़ी हुई, गिरी हुई, वस्तु को उस स्वामी की अनुमति के बिना ग्रहण करना या ग्रहण करने का भाव करना भी चोरी है, यह चोरी का स्थूल लक्षण है। सूक्ष्म रूप से; दूसरे के विचार, आशय, ज्ञान, यश, सुख, शांति छीनता भी चोरी है। जिस वस्तु का अधिकारी किसी और को होना चाहिए यदि आप उसके अधिकारी अवैध रूप से बन गये है तो वह भी चोरी है। निश्चयापेक्षा से तो पर पदार्थों का ग्रहण, आत्मा लीनता का अभाव चोरी है। स्वात्म लीनता ही निश्चय से अचौर्य व्रत है।

4. ब्रह्मचर्य व्रत

अपनी ब्रह्म स्वरूप आत्मा में लीन होना, किसी भी स्त्री के साथ काम सेवन, या इन्द्रिय विषय में प्रवृत्ति नहीं करना ही ब्रह्मचर्य व्रत है। यह व्यवहार ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। स्त्री मात्र के साथ मैथुन का मन, वचन, काय से त्याग करना ब्रह्मचर्य व्रत है।

5. अपरिग्रह व्रत

चेतन व अचेतन के भेद से परिग्रह के दो भेद हैं। इसके भी अंतरंग व बहिरंग के भेद से दो भेद हैं। उनके क्रमशः 14 व 10 भेद है। समस्त परिग्रह का मन वचन, काय से त्याग करना अपरिग्रह व्रत है। मन, वचन, काय से, कृत कारित अनुमोदना से समस्त वाह्य पदार्थों का त्याग करना, अपनी आत्मा में ही लीन हो जाना निश्चय से अपरिग्रह व्रत है। व्यवहार अपेक्षा से सकल वाह्य परिग्रह का, यथा शक्य अंतरंग परिग्रह का त्याग करना अपरिग्रह व्रत है।

इन पांचों व्रतों का पालन श्रावक एक देश करता है क्योंकि वह गृहस्थ है, उसके व्रत देश व्रत या अणुव्रत कहे जाते हैं तथा साधक को इन व्रतों का सकल देश या सम्पूर्णतया पालन करना चाहिए इन व्रतों के बिना आत्म-कल्याण असंभव ही है। इन पांच व्रतों का पालन करने से हजारों नियमों व संविधान के पालन की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं में सभी नियम, कानून, विधान व संविधान का पालन हो जाता है।

★★★★★

पूर्व कथ्य.....

—उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

प्रस्तुत ग्रन्थ "शान्तिनाथ पुराण" वर्तमान चौबीसी के सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ स्वामी जी का पवित्र जीवन चरित्र है। भगवान शान्तिनाथ स्वामी ही वर्तमान कालीन चौबीसी में ऐसे तीर्थंकर हैं जिन्होंने सुदीर्घ काल तक पुण्य फलस्वरूप महापदों के वैभव को पूर्व के दशभवों में निरन्तर भोगा है। पूर्व में दो बार तीर्थंकर के पुत्र हुए, एक बार चक्रवर्ती व बलभद्र बने, इन्द्र, प्रतीन्द्र, व अहमिन्द्र पद के वैभव को अनेक बार भोगा। वर्तमान भव या चरम भव में भी तीर्थंकर, कामदेव व चक्रवर्ती के ऐश्वर्य, वैभव एवं अभ्युदय को युगपत् भोगा। भगवान शान्तिनाथ स्वामी के पूर्व सात तीर्थंकरों के काल में कुछ समय के लिये धर्म की विच्छित्ति/लोप रहा किन्तु शान्तिनाथ भगवान के समय से लेकर अभी तक धर्म अखण्ड धारा शान्तिधारा के रूप में प्रवर्तमान हैं। यूं तो भगवान शान्तिनाथ स्वामी के जीवन चरित्र के प्रतिपादक अनेक विद्वान, मनीषियों द्वारा विरचित कई ग्रन्थ हैं, जो कि पूर्वाचार्यों के अनुसार ही रचित हैं। नेकानेक दिगम्बर जैनाचार्यों ने भी भगवान शान्तिनाथ स्वामी के परम पावन चरित्र को शब्दों में लिपिबद्ध किया था। किन्तु वर्तमान समय में परम पूज्य आचार्य भगवन् सकल कीर्ति महाराज व आचार्य भगवन् गुणभद्र स्वामी द्वारा विरचित साहित्य ही उपलब्ध हैं। मनीषी विद्वानों में सिद्धान्त पारगामी व्याकरण संस्कृत के प्रकाण्डज्ञाता कवि सम्राट श्री असग जी द्वारा विरचित् शांन्तिनाथ पुराण भी पूर्वाचार्यों के अनुसार होने से प्रमाणिक एवं सर्व ग्राह्य/उपादेय शास्त्र है। कवि असग जी एक भवभीरु, संवेगी, आत्म–संतोषी एवं वैराग्योन्मुख सुधी श्रावक रहे। इनका जन्म चोल देश के विरला नगर में हुआ था, इनके पिता का नाम श्री पटुमति एवं माँ का नाम श्रीमती वैरेति था। आचार्य नागनंदी महाराज के ये शिष्य थे। इनके मित्र का नाम जिनाप था। श्रावक अवस्था में ही इन्होंने ग्रन्थों की रचना की बाद में ये मुनि बने या नहीं यह विषय अभी भी अनिर्णीत है। आठ ग्रन्थों की रचना का कार्य इन्होंने चोल देश में श्री नाथ राजा के राज्य में विरला नगरी में ई. 910 या वि. सं. 967 में किया। पल्लव नरेश–नन्दि पोतरस के चोल सामन्त श्री नाथ के आश्रय में आर्यनंदी के वैराग्य पर वर्धमान चरित्र की रचना की। इससे अधिक इनका परिचय हमें प्राप्त नहीं हो सका।

कविवर असग जी द्वारा विरचित 2 ग्रन्थ (वर्धमान चरित्र व शान्तिनाथ पुराण) वर्तमान में उपलब्ध हैं, शेष छह ग्रन्थ सम्भव हैं, मातृभाषा कन्नड़ होने से कन्नड़ भाषा में ही लिपिबद्ध हों, अथवा कर्नाटक के किसी भण्डार में दीमक व चूहों के लिये सुपाच्य खाद्य बन गये हों। हमारे प्रमाद से यह भी सम्भव है, भण्डारों में ही सड़ रहे या गल रहे हों या कृषि हेतु उत्तम खाद या मिट्टी का रूप

ले चुके हों, क्योंकि वर्तमान काल में भी सहस्त्रों ग्रन्थराज भारत के विभिन्न प्रान्तों में भाषा की विभिन्नता व रुढ़ि और परम्परा की भिन्नता से दक्षिण भारत के ग्रन्थ उत्तर भारत में स्थान पा लेने में असमर्थ भी हैं, वे उचित स्थान व उपयोगिता से विहीन उपेक्षा भाव से ग्रसित किसी रद्दी की टोकरी में या बोरों में भरे पड़े हैं। धर्म बुद्धि से विहीन, धर्मज्ञान से रिक्त किन्तु श्री सम्पन्न किसी मन्दिर के प्रधान/अध्यक्ष, मंत्री या व्यवस्थापकों के अहम् की पुष्टि करते हुए अपनी अंतिम श्वांस विसर्जित कर रहे हैं। आज भी नेक स्थानों पर कुछ हठग्रही श्रावकों की बंद अलमारियों में नेक दशाब्दियों/दशकों से मृत छिपकली, झींगुर, मकड़ी, चूहे, गिलहरी काँतर व कीड़े-मकोड़ों के बीच अपनी किस्मत पर पंचम काल की बलिहारी अश्रुपात करते हुए करुण क्रन्दन कर रहे हैं। आज भी न केवल कन्नड़ साहित्य अपितु संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, ढूंढारी, मराठी, उर्दू आदि भाषाओं का भी सर्व ज्ञानोपयोगी जैन साहित्य धर्मावलंबियों के प्रमाद से दयनीय अवस्था को प्राप्त हो रहा है।

कन्नड़ आदि भाषा की सहस्त्रों सहस्र ताइपत्रीय/देशी घास प्रत्रीय प्रतियाँ आज भी अनालोकित व अपठित दशा में विद्यमान हैं, उन शास्त्रों के नामों की एक विषय सूची ही लगभग 250-300 पृष्ठ की हमारे पास भी विद्यमान हैं। यह सब देखकर किसी कवि की महत्वपूर्ण पंक्ति बार-बार याद आ रही है-

जिनवाणी जिन देव से, रो-रो करे पुकार।
हमें छोड़ तुम शिव गये, करि कुपात्र अधिकार॥

वर्तमान काल में तीर्थों का जीर्णोद्धार मन्दिरों का जीर्णोद्धार आदि के कार्य तो बहुत जोर-शोर से चल रहे हैं, यदि कोई महानुभाव शास्त्रों के जीर्णोद्धार एवं धर्मात्माओं (श्रमणों व श्रावकों) के जीर्णोद्धार का कदम उठाये तो विश्व में सुख शान्ति की स्थापना की उम्मीद आज भी हो सकती है। यदि सत् साहित्य का नव निर्माण व पुरातन सत् साहित्य का संरक्षण व संवर्धन नहीं किया और श्रावकों व श्रमणों के चारित्र में लगी शिथिलता की जंग को दूर नहीं किया तथा प्रत्येक मानव मात्र को इस कर्त्तव्य के प्रति प्रेरित नहीं किया तो विश्व शान्ति की स्थापना करने की कल्पना तो की जा सकती है, किन्तु उन स्वप्नों को साकार रूप नहीं दिया जा सकता।

प्रस्तुत ग्रन्थ में शान्तिनाथ भगवान के राजा श्रीषेण से लेकर शान्तिनाथ की पर्याय तक के दस-बारह भवों का विस्तार से वर्णन है। श्रीषेण राजा आहार दान के प्रभाव से सिंहनंदिता, अनिन्दिता व सत्यभामा ब्राह्मण पुत्री सहित क्रमशः आर्य-आर्या बने। वहाँ से श्रीप्रभदेव तत्पश्चात् अमिततेज, पुनः अच्युतेन्द्र तत्पश्चात् वज्रायुध विद्याधरों का चक्रवर्ती, ग्रैवेयक में अहमिन्द्र वहाँ से चयकर

घनरथ तीर्थंकर के पुत्र मेघरथ द्वारा तीर्थंकर प्रकृति बाँध कर सर्वार्थसिद्धि गये वहाँ से च्युत होकर सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ बने।

इस शास्त्र में कविवर असग जी ने जैन सिद्धान्त के गूढ़तम रहस्यों का सूक्ष्म विश्लेषण, यथार्थ घटनाओं का वर्णन एवं संसार की दशाओं के दर्शायक सन्दर्भों का हृदयतल स्पर्शी व्याख्यान् किया है, इस शास्त्र में केवल प्रथमानुयोग ही नहीं है अपितु चरणानुयोग, करणानुयोग तथा द्रव्यानुयोग भी अविनाभावी रूप से संलग्न है। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त न्याय, नीति, सदाचरण, व्याकरण व आध्यात्मिक तथ्यों का भी अभाव नहीं है। इस ग्रन्थ में कविवर महोदय ने अपनी मन गढ़न्त कल्पनाओं को नहीं लिखा बल्कि पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रतिपादित विषय का ही पुनरोत्थान किया है। दीमक व मूषकों की सुपाच्य खाद्य सामग्री बनता हुआ जीर्ण-शीर्ण पत्रों से युक्त यह ग्रन्थ दिल्ली के किसी जिनालय से अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त हुआ। प्राप्तकर इसके शुद्ध व सुन्दर प्रकाशन की आवश्यकता महसूस हुई सो न्यायोपार्जित साधर्मी सुधी श्रावकों ने ऐलक जी से इस कार्य के लिये निवेदन किया जिसका परिणाम आपके कर कमलों में विद्यमान है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोगी ऐलक श्री विमुक्त सागर जी महाराज, क्षुल्लक श्री विशंक सागर जी महाराज, संघस्थ त्यागी व्रती सुधी श्रावक-श्राविकाओं को समाधिरस्तु आशीर्वाद प्रकाशक निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, मुद्रक-अनिल कुमार जैन, चन्द्रा कॉपी हाउस, आगरा एवं अपने समीचीन द्रव्य का सदुपयोग करने वाले सुधी श्रावक श्री बिट्टनलाल जैन, एटा एवं प्रत्यक्ष व परोक्ष में रहे सभी सहयोगी जनों को जो ख्याति नाम की चाह से विरक्त हैं धर्म वृद्धि शुभाशीर्वाद।

इस ग्रन्थ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ/छद्मस्थ श्रमण द्वारा जो भी त्रुटि रह गई हों तो अभेद रत्नत्रयधारी सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए सुधार हेतु संकेत देने का अनुग्रह करें। तथा गुणग्राही सत् श्रद्धालु विनय व शिष्टाचार से मुक्त पाठकगण समीचीन अर्थ को ग्रहण करते हुए आत्म कल्याण की पुनीत भावना के साथ ग्रन्थराज का आद्योपांत स्वाध्याय कर अपने सम्यग्ज्ञान व धर्म ध्यान की वृद्धि करते हुए सम्यक्दर्शन व चारित्र को निर्मल व सुदृढ़ बनायें ऐसी आपके प्रति मेरी मंगल भावनाएँ हैं।

इन्हीं भावनाओं के साथ—

अलमति विस्तरेण

श्री शुभमिती
जेष्ठ सुदी 5 (श्रुत पंचमी)
रविवार वासरे
वी. नि. सं. 2528
वि.सं.-2059

संयमानुरक्तः पापभीरुः
कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः जिनचरण चंचरीक
16 जून 2002 रविवार
कुन्द कुन्द भारती
नई दिल्ली

विषय सूची

दशम् सर्ग–

वज्रायुध की आयुधशाला में चक्ररत्न एवं पिता श्री क्षेमंकर तीर्थंकर को केवलज्ञान प्राप्त होना, प्रथम तीर्थंकर की पूजन बाद में चक्ररत्न की पूजा करना, सभा में शरणागत् विद्याधर व विद्याधारी का तलवार लेकर आना, चक्रवर्ती द्वारा दोनों के पूर्व भव जानना, दीर्घकाल तक राज्य करना, पुनः तीन हजार राजाओं के साथ मुनि दीक्षा का ग्रहण करना, अश्वग्रीव के दो पुत्र (पंचम भव में चक्रवर्ती द्वारा मारे गये) उनका मुनिराज का घात करने के लिये आना। रंभा तिलोत्तमा को देखकर भाग जाना, पिता की साधना से प्रभावित हो सहस्त्रायुध का दीक्षा ग्रहण करना, दोनों का समाधि मरणोपरांत उपरिम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र होना।

एकादश सर्ग–

जम्बूद्वीप पूर्व विदेह पुष्पकलावती देश पुण्डरीकिणी नगरी में राजा घनरथ व रानी मनोहर के उपरिम ग्रैवेयक का जीव का मेघरथ पुत्र रूप में जन्म लेना, सहस्त्रायुध जीव का प्रीतिमती रानी से दृढ़रथ के रूप में जन्म लेना, राजसभा में राजा घनरथ के द्वारा मुर्गों के पूर्व भव पूछे जाने पर मेघरथ द्वारा बतलाना, तीर्थंकर घनरथ का दीक्षा लेना, मेघरथ राजा द्वारा हिलते हुए पर्वत को दबाना, विद्याधरी द्वारा पति रक्षा की भिक्षा माँगना।

द्वादश सर्ग–

राजा मेघरथ के द्वारा कार्तिक के शुक्ल पक्ष में दया की घोषणा, अष्टान्हिका में पूजा व तेला का नियम लेना, सभा में कबूतर व बाज का आना, मनुष्य की आवाज में बोलना, राजा मेघरथ द्वारा उनके पूर्व भवों का कथन करना, देवों द्वारा मेघरथ की पूजा होना, मेघरथ राजा द्वारा दमधर मुनि को आहार दान देना, मेघरथ राजा द्वारा प्रतिमा योग धारण करना, अरजा विरजा देवियों द्वारा उनकी परीक्षा एवं रक्त देवियों द्वारा राजा की पूजा, प्रियमित्रा का रूप सौन्दर्य देखने हेतु दो स्त्रियों का आना, प्रियमित्रा को स्त्रियों द्वारा जग की अनित्यता का प्रतिबोधन, राजा मेघरथ का नंदिवर्धन को राज्य दे अनेक राजाओं के साथ दीक्षा लेना, रानी प्रियमित्रा आदि अनेक रानियों का आर्यिका दीक्षा लेना, राजा घनरथ द्वारा तीर्थंकर प्रकृति बंध एवं प्रायोपगमन सन्यास धारण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र होना।

त्रियोदशम् सर्ग–

कुरुजांगल देश हस्तिनागपुर में राजा विश्वसेन व रानी ऐरा देवी के सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र का गर्भ में आना, माता ऐरा देवी को सोलह स्वप्न दिखायी देना, सौधर्म इन्द्र व असंख्यात् देव–देवियों द्वारा गर्भ कल्याणक का उत्सव मनाया जाना, ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को भरणी नक्षत्र में प्रातः काल भगवान शांतिनाथ का जन्म होना, इन्द्र समूह द्वारा पाण्डुक शिला पर अभिषेक करना, इन्द्राणी शचि द्वारा तीर्थंकर बालक का श्रृंगार किया जाना इत्यादि।

चतुर्दशम् सर्ग–

भगवान शान्तिनाथ के बाल्यकाल का वर्णन, विश्वसेन की दूसरी रानी यशस्वती के दृढ़रथ के जीव का सर्वार्थसिद्धि से चयकर जन्म लेना, उसका नाम चक्रायुध रखा जाना, दोनों के कुमारकाल का वर्णन, पूर्वभव के संस्कारों के वश से दोनों में अपार स्नेह होना, शान्तिनाथ स्वामी का पच्चीस हजार वर्ष कुमार काल व्यतीत होना, राजा विश्वसेन द्वारा शान्तिनाथ को राज्य सौंपना, पच्चीस हजार वर्ष बाद आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न होना, दिग्विजय का वर्णन संध्या, रात्रि के तिमिर, चन्द्रोदय व सूर्योदय आदि का प्रासंगिक वर्णन।

पञ्चदशम् सर्ग–

शान्तिनाथ स्वामी का पच्चीस हजार वर्ष तक चक्रवर्ती पद का वैभव भोगना, सफेद बाल देखकर वैराग्य होना, चतुर्दशी को अपने पुत्र नारायण को राज्य देकर दीक्षा लेना, देवों द्वारा दीक्षा कल्याणक मनाया जाना, पौष शुक्ला दशमी को केवलज्ञान प्राप्त करना भगवान के समवशरण की रचना का वर्णन, भगवान की दिव्यध्वनि का वर्णन।

षोडशम् सर्ग–

भगवान शान्तिनाथ स्वामी का अनेक देश देशान्तरों में विहार होना, भव्य जीवों को भगवान का धर्मोपदेश मिलना, जीव–अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन प्रयोजन भूत सप्त तत्वों का विस्तृत विवेचन, भगवान शान्तिनाथ स्वामी का । माह पूर्व योग निरोध करना, ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को समस्त अघातिया कर्मों को नष्ट कर सम्मेद शिखर जी से मोक्ष प्राप्त करना, चारों निकाय के देव समूह व इन्द्रादि द्वारा भगवान शान्तिनाथ स्वामी के मोक्ष कल्याणक का उत्सव मनाया जाना।

कवि प्रशस्ति एवं अन्त में टीकाकार की प्रशस्ति।

○○○

आभार

.....जन-जन के कल्याण में समर्थ पूज्य आचार्य भगवंतो द्वारा सृजित महान ग्रंथों जिनमें श्रुत विद्या का असीम दिग्दर्शन होता है ऐसे सत् साहित्य के संरक्षण एवं संवर्धन में आपके द्वारा समर्पित अमूल्य योगदान का **निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला** *हार्दिक अभिनन्दन करती है।*

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

पुण्यार्जक श्रावक

श्री बिट्टन लाल जैन

अंगूरी देवी जैन

सुभाष मिष्ठान भण्डार

घंटाघर रोड, एटा

फोनः-05742-33527

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

श्रीमदसगमहाकविविरचितम्

श्री शान्तिनाथ पुराण–2

दशम सर्गः

अथानन्तर किसी समय अनाथजनों के साथ स्नेह करने वाले राजा को नमस्कार कर शस्त्रों के अध्यक्ष नन्द ने इस प्रकार के वचनों द्वारा आनन्दित किया।1।। हे राजन्! शत्रुओं को नम्रीभूत करने वाले आपके पराक्रम के साथ ईर्ष्या होने से ही मानो जगत् पर आक्रमण करने के लिये आयुधशाला में चक्र उत्पन्न हुआ है।।2।। जब राजा के लिये नन्द इस प्रकार चक्र की उत्पत्ति का समाचार कह रहा था तब भाग्य के द्वारा जाते हुए–भाग्यशाली किसी अन्य मनुष्य ने नमस्कार कर उससे यह निवेदन किया कि आपके पिता ने परम विरक्त होने पर भी घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाली तथा समस्त जगत् को नम्रीभूत कर देने वाली केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी का वरण किया है।।3–4।। तीनों जगत् के रक्षक उन परमेष्ठी के निवास से आज श्रीनिलय नाम का उद्यान नाम की अपेक्षा सार्थक हो गया है। भावार्थ–चूंकि श्रीनिलय उद्यान में वे विराजमान हैं इसलिये वह उद्यान सचमुच ही श्री–लक्ष्मी का निलय–स्थान हो गया है।।5।। जो तेज के द्वारा हजारों सूर्यों के साथ स्पर्द्धा करते हुये भी सुख पूर्वक देखे जाते हैं तथा लोगों को हित करने में उद्यत हैं ऐसे वे केवली भगवान् अतिशय दैदीप्यमान हो रहे हैं।।6।।

लक्ष्मी के निवास के लिये जिनका शरीर नीरजीभूत–कमलरूप परिणत हो गया है। (पक्ष में पाप रूपी धूली से रहित हो गया है।) ऐसे उन प्रभु के लिये तीनों लोक स्वयं नम्रीभूत हो गये हैं।।7।। जिनका निर्दोष ऐश्वर्य आठ प्रातिहार्यों से सहित है उन प्रभु का इन्द्र तो द्वारपाल हो गया है और कुबेर किङ्कर–आज्ञाकारी सेवक बन गया है।।8।। उस समय अद्भुत लक्ष्मी से युक्त उन भगवान की अन्तरङ्ग सम्पत्ति और बहिरङ्ग सम्पत्ति के विभाग से स्थित जो स्थिति है उसे कहने के लिये भी मैं समर्थ नहीं हूँ।।9।। आनन्द के भार से उत्पन्न आंसुओं से जिसके नेत्र व्याकुल हो रहे थे ऐसे राजा के लिये इस प्रकार का प्रिय समाचार कह कर वन पालक चुप हो गया।।10।। राजा ने उसे अपने शरीर पर स्थित आभूषण उतार कर दे दिये जिससे ऐसा जान पड़ता था मानों बहुत भारी हर्ष के भार से वह उन आभूषणों को धारण करने में असमर्थ हो गया था।।11।।

विभूति तो धर्ममूलक है इसलिये चक्र की उत्पत्ति में उसे कोई उत्सुकता उत्पन्न नहीं हुई थी। वह उनकी विभूति प्राप्त करने की इच्छा से तीर्थंकर के चरणों को नमस्कार करने के लिये गया।।12।। मनुष्य देव और असुरों से व्याप्त दूसरे त्रैलोक्य के समान उनके चरणों का अवलोकन कर राजा ने ऐसा माना मैंने चक्षु का फल परिपूर्ण से प्राप्त कर लिया है।।13।। तदनन्तर दूर से ही दर्शन कर उसने यथोक्त भक्ति के द्वारा उनकी पूजा की। पश्चात् उन प्रभु के पास जाकर पुनरुक्त के समान सामग्री के द्वारा पूजा की।।14।। जो बहुत भारी भक्ति के भार से ही मानों नम्रीभूत हो रहा था ऐसे राजा ने बार–बार स्तुति कर, प्रदक्षिणा देकर तथा अपने आपका निवेदन कर उन स्वयंभू भगवान् की वन्दना की–उन्हें नमस्कार किया।।15।। इस प्रकार उन तीर्थंकर परमदेव की उपासना कर तथा श्रवण करने योग्य उपदेश को चिरकाल तक सुनकर राजा हृदय में उनके परम ऐश्वर्य का ध्यान करता हुआ नगर में वापिस आया।।16।।

चक्रवर्तियों में श्रेष्ठ वज्रायुध ने सबसे पहले शस्त्रों के अध्यक्ष नन्द के मनोरथ को पूर्ण किया पश्चात् शास्त्रानुसार चक्र की पूजा की।।17।। तदनन्तर चक्ररत्न को आगे–आगे चलाने वाला चक्रवर्ती

थोड़े ही समय में समस्त पृथ्वी को वश कर पुनः अपने नगर में प्रविष्ट हुआ।।18।। भव्यत्व गुण के कारण वह सम्राट चौदहों रत्नों की अपेक्षा रत्नत्रय–सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को ही अपने सुख का साधन मानता था।।19।। यद्यपि बत्तीस हजार राजा उसकी सेवा करते थे और नौ निधियों का वह स्वामी था तो भी उसका हृदय विषयों से विरक्त रहता था।।20।।

एक समय शरणार्थियों को शरण देने वाले सम्राट् सभा में विराजमान थे उसी समय कोई विद्याधर आकाश से उनकी शरण में आया।।21।। उसके पीछे ही एक विद्याधरी आयी और तलवार से युक्त हाथों को मस्तक पर धारण कर चक्रवर्ती से इस प्रकार कहने लगी।।22।। हे देव! आप असाधारण राजा हैं तथा प्रजा की रक्षा करने के लिये दीक्षित हैं–सदा तत्पर हैं अतः आपको इस अपराधी की रक्षा करना योग्य नहीं है।।23।। आपके आगे पराक्रमी मनुष्य को भी अपना पौरुष कहना उचित नहीं है फिर मुझ स्त्री की तो बात ही क्या है? तदनन्तर जब वह स्त्री लज्जा पूर्वक इस प्रकार के वचन कह रही थी तब मुद्गर उठाये हुये एक दूसरा वृद्ध पुरुष बड़े वेग से वहाँ आया।।25।। दूर से ही मुदग्र को छोड़कर तथा समीप में आकर जिसने नमस्कार किया था, जो प्रशस्त वक्ता था और हाथ जोड़कर खड़ा हुआ था ऐसे उस वृद्धपुरुष ने सम्राट से इस प्रकार के वचन कहे।।26।।

इस विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में एक शुक्लप्रभ नाम का नगर है मैं उसका राजा हूँ तथा प्रभञ्जन नाम से विख्यात हूँ।।27।। शुभकान्ता इस नाम से प्रसिद्ध मेरी स्त्री है। शुभकान्ता शुभ अभिप्राय वाली है तथा ऐसी जान पड़ती है मानों विद्याधर लोक की दूसरी ही राजलक्ष्मी है।।28।। सन्तान की इच्छा रखते हुए मैंने उसमें यह शान्तिमती नाम की पुत्री उत्पन्न की है। यह पुत्री अत्यन्त धीरगम्भीर और बुद्धि से सुशोभित स्थिति वाली है।।29।। यह पुत्री मुनिसागर पर्वत पर प्रज्ञप्ति नाम की विद्या सिद्ध कर रही थी परन्तु काम की इच्छा करने वाले इस पुरुष ने बलपूर्वक इसे परिभूत किया।।30।। इसके धैर्य से ही मानों लुभाकर विद्या सिद्धी को प्राप्त हो गयी। विद्या सिद्ध होते ही यह काम

को भूल गया और अपनी रक्षा का इच्छुक हो गया। भावार्थ–हमारे प्राण कैसे बचें इस चिन्ता में पड़ गया।।31।।

तदनन्तर युद्ध की इच्छा से इस कन्या ने इसका पीछा किया। भागता हुआ यह जगत्पूज्य आपको देखकर आपकी शरण में आया है।।32।। आभोगिनी विद्या की आवृत्ति कर अर्थात् उसके माध्यम से जब मुझे इसकी इस पराभूति का पता चला तब मैं भी क्रोध से सैनिकों की प्रतीक्षा न कर आ गया हूँ।।33।। यद्यपि यह हमारा वध्य है–मारने के योग्य है तो भी आपकी शरण में आने से पूज्य ही हो गया है क्योंकि स्वामी के द्वारा अनुगृहीत पुरुष का अनादर कौन कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।।34।। इस प्रकार उसके वृत्तान्त को कहकर जब प्रभञ्जन चुप हो गया तब राजा ने अवधिज्ञान को परिवर्तित कर अर्थात् उस ओर उसका लक्ष्य कर उनके पूर्वभव को देखा।।35।।

तदनन्तर अपने मुख पर जिनके नेत्र लग रहे थे ऐसे सभासदों से राजा ने इस प्रकार कहा–अहो! जीव की ऐसी पूर्वभवसम्बन्धी प्रेम की वासना को देखो।।36।। जम्बू वृक्ष से युक्त इस जम्बू द्वीप के ऐरावत क्षेत्र में गान्धार नाम का एक ऐसा देश है जहाँ मेघ सदा विद्यमान रहते हैं।।37।।

उस देश में स्वर्ग के समान विन्ध्यपुर नाम का नगर है। विन्ध्यसेन नाम का राजा उसका रक्षक था।।38।। उस राजा की सुलक्षणा–अच्छे लक्षणों से सहित सुलक्षणा नाम की पुत्री थी उन दोनों के नलिन केतु नाम का पुत्र हुआ जो सदा काम से आतुर रहता था।।39।। उसी नगर में धर्मप्रिय नाम का श्रेष्ठ वणिक् रहता था। उसकी स्त्री का नाम श्रीदत्ता था जो मानों दूसरी लक्ष्मी ही थी।।40।। उन दोनों के दत्त नाम का ज्येष्ठ पुत्र हुआ जो माता–पिता के अनुकूल था सुन्दर था, कुटुम्बीजनों को आनन्दित करने वाला था तथा विनय से युक्त चित्त वाला था।।41।। लोकरीति के ज्ञाता पिता ने विधिपूर्वक उसे समान कुल तथा समान रूप वाली प्रियंकरा कन्या के साथ मिलाया।।42।।

जिसके देखने से कभी तृप्ति नहीं होती थी ऐसी वह कन्या कभी सखियों के साथ उस नगर के उद्यान में विहार कर रही थी उसी समय

राजपुत्र–नलिन केतु ने उसे देखा।।43।। जगत् की सारभूत उस कन्या को देखकर न केवल वह आश्चर्य करने लगा किन्तु मन से उसने बहुत भारी कामावस्था का भी आश्रय लिया। भावार्थ–उस कन्या को देखकर वह मन में अत्यधिक काम से पीड़ित हो गया।।44।। उसने अपकीर्ति का भार स्वीकृत कर उसे बलपूर्वक ग्रहण कर लिया। राजा यद्यपि पुत्र से बहुत राग करता था परन्तु इस घटना से पृथ्वी पर वह पुत्र सम्बन्धी राग से रहित हो गया।।45।। प्रियंकरा का पति दत्त उसके वियोग से बहुत दुःखी हुआ। माता–पिता ने यद्यपि उसे रोका तो भी उस रुद्रपरिणामी–कठोर हृदय ने सुभद्र मुनिराज के समीप तप ग्रहण कर लिया–दीक्षा ले ली। तपस्या करते हुएउसने किसी समय विद्याधर राजा की संपदा देखी। देखकर वह उस संपदा के लिये उत्सुक हो गया। फलस्वरूप उस अज्ञानी ने अपने लिये उस संपदा का निदान कर लिया।।47।।

सुकच्छा देश में स्थित विजयार्धपर्वत की उत्तर श्रेणी में एक काञ्चनतिलक नाम का बड़ा भारी नगर है।।48।। उस नगर का राजा महेन्द्र था जो लक्ष्मी से इन्द्र के समान था। उसकी रानी का नाम पवनवेगा था।।49।। वह दत्त अपने निदान से दोनों के अजितसेन नाम का पुत्र हुआ है तथा संपूर्ण विजयार्द्ध पर्वत का शासन कर रहा है।।50।। उधर राजपुत्र नलिनकेतु यद्यपि परस्त्री में आसक्त था तो भी एक दिन उसने स्वेच्छा से एक गाय के लिये दो बैलों का युद्ध देखा।।51।। एक अत्यन्त बलवान् बैल ने सींग के अग्रभाग से दूसरे बैल का उदर विदीर्ण कर दिया जिससे वह शीघ्र ही निकलती हुई आंतों के समूह से आकुलित हो गया।।52।। उस घायल बैल को देखकर नलिन केतु तत्काल ऐसा विचार करने लगा कि इस प्रियंकरा का पति भीरु और दुर्बल नहीं होता तो मेरी भी ऐसी दशा करता।।53।। निश्चित ही विषयान्ध मनुष्य इस लोक और परलोक में भारी दुःख प्राप्त करते हैं। ऐसा विचार कर वह संसार से विरक्त हो गया।।54।। नलिनकेतु प्रियधर्मा मुनि के पास जाकर तपस्वी हो गया और अत्यन्त शान्त चित्त होता हुआ मोक्ष को प्राप्त हुआ।।55।। पति के विरह रूपी तुषार से

जिसका मुख कमल म्लान हो गया था ऐसी प्रियंकरा ने सुस्थिता नामक आर्यिका के कहने से चान्द्रायण व्रत किया।।56।। वही प्रियंकरा मर कर शान्तिमती हुई है। यह दत्त भी जो अब अजितसेन हुआ है रागवश न चाहने पर भी इस शान्तिमती के पास गया था। आश्चर्य है कि काम बड़ी कठिनाई से छूटता है।।57।। यह शान्तिमती श्रेष्ठ मुक्तावली व्रत को धारण करती हुई तपस्या करेगी और ईशान स्वर्ग में पुरुषपर्याय को प्राप्त कर उत्तम देव होगी।।58।। वहाँ से अवतीर्ण होकर वह देव अष्टकर्मों के बन्धन को नष्ट कर मुक्ति को प्राप्त होगा। इसकी वितव्यता ही ऐसी है।।59।। इस प्रकार उन दोनों के सम्बन्ध कहकर राजा चुप हो गया। और वे सब उसकी पूजा कर निश्चल हो जिनेन्द्र भगवान् के समीप दीक्षित हो गये।।60।।

उसी विजयार्ध पर्वत पर एक शिव मन्दिर नाम का नगर है। उसमें विद्याधरों का राजा मेरुमाली निवास करता था।।61।। उसकी निर्मल अभिप्राय वाली विमला नाम की महारानी थी। समस्त कलाओं से युक्त वह महारानी ऐसी जान पड़ती थी मानों पूर्णिमा के चन्द्र की मूर्ति ही हो।।62।। उन दोनों के उत्तम सुवर्ण के समान आभावाली काञ्चनमाला नाम की पुत्री हुई। वह काञ्चनमाला तीनों जगत् की कान्ति की प्रकृष्ट सिद्धियों से युक्त अधिष्ठात्री देवी थी।।63।। मेरुमाली ने चक्रवर्ती के गौरव से वह पुत्री उसके योग्य कनकशान्ति के लिये प्रीतिपूर्वक दी।।64।। तदनन्तर अपनी भुजाओं के प्रताप से पृथुकसार नगर की रक्षा करने वाला एक जयसेन नाम का विद्याधर था। उसी स्त्री का नाम जया था।।65।। उन दोनों की वसन्त सेना नाम की पुत्री थी। वसन्त सेना वसन्त लक्ष्मी के समान आकृति को धारण करने वाली थी। कनकशान्ति ने इस वसन्त सेना का भी विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया।।66।। उस वसन्तसेना की बुआ का लड़का हिमचूल विद्याधर था। वह उसे विवाहना चाहता था परन्तु कनकशान्ति के द्वारा विवाही जाने पर उसका मनोरथ व्यर्थ हो गया अतः वह वसन्तसेना को न पाकर बहुत दुःखी हुआ।।67।। हिमचूल विद्याधर वसन्तसेना के पति कनकशान्ति का अपकार करने

की इच्छा से भीतर ही भीतर क्रोध को छिपाये रखता था। इसलिये वह भस्म से आच्छादित अग्नि के समान जान पड़ता था।।68।।

कनकशान्ति, अपनी दोनों सुन्दर स्त्रियों–काञ्चनमाला और वसन्तसेना के साथ इच्छानुसार उद्यान, तथा क्रीड़ागिरी आदि पर क्रीड़ा करता था।।69।। जिसे विद्याएं सिद्ध है ऐसा वह कनकशान्ति किसी अन्य समय अपनी स्त्रियों के साथ सुन्दर स्थान देखने की इच्छा से गगनचुम्बी अग्रभाग से युक्त हिमालय पर्वत पर गया।।70।। एक लता से दूसरी लता के पास जाता हुआ तथा हर्ष से फूल तोड़कर उन दोनों स्त्रियों को समान भाव से देता हुआ वह अपने शुभ हृदय की स्थिति को प्रकट कर रहा था। भावार्थ–दक्षिण नायक की तरह वह दोनों स्त्रियों के प्रति समान प्रेमभाव प्रकट कर रहा था।।71।। उन स्त्रियों के द्वारा रोके जाने पर भी वह प्रयत्न के बिना ही बनी हुई सुगन्धित फूलों की शय्याओं से सहित लतागृहों के समीप घूम रहा था।।72।। हथिनियों के द्वारा प्रेम से दिये हुये पल्लवों को उपेक्षा भाव से ग्रहण करने वाले मदोन्मत यूथपति को वह अपनी प्रियाओं के लिये दिखा रहा था।।73।। जो वायु के वश बार–बार उछल–उछल कर जा रहा था तथा वन लक्ष्मी की गेंद के समान जान पड़ता था ऐसे समीपवर्ती मृग को वह अपनी प्रियाओं के लिये दिखा रहा था।।74।। वह कनकशान्ति स्वयं संगीत में निपुण था इसलिये किन्नरों का गान सुनकर स्त्रियों के द्वारा प्रेरित होता हुआ अभिनय के साथ कुछ–कुछ गा रहा था।।75।। उन स्त्रियों के केश विन्यास के क्षोभ से शङ्कित–भयभीत हुए के समान धीरे–धीरे चलने वाली सुखद वायु उसकी सेवा कर रही थी।।76।। सरसी में कमलिनी के पत्तों से चकवा क्षणभर के लिये आच्छादित हो गया–छिप गया इसलिये उसके विरह में चकवी मूर्च्छित हो गयी। कनकशान्ति अपनी प्रियाओं के लिये चकवी का वह प्रेम दिखला रहा था।।77।। स्फटिक मणि में एक लता प्रतिबिम्बित हो रही थी। उसके फूल तोड़ने की इच्छा से भोलेपन के कारण दोनों स्त्रियाँ उसके पास जाने लगीं। कनकशान्ति हँस–हँस कर उन्हें यथार्थता से अवगत करा रहा था।।78।। कोई एक

हंसी आगे नदी के विस्तार को देखकर खड़ी हो गयी थी। कनकशान्ति ने उसे देखा ऐसा समझा मानों यह हंसी हमारी स्त्रियों की सुन्दर चाल से पराजित होकर ही खड़ी हो गयी है।।79।। इस प्रकार अपनी ओर टकटकी लगाकर देखने वाली वहाँ की वन देवियों के मन को हरण करता हुआ वह उन प्रियाओं के साथ क्रीड़ा कर रहा था।।80।।

उसी कनकशान्ति ने वहाँ किसी अन्य जगह मोतियों की शिला पर विराजमान मुनिराज को देखा। वे मुनिराज ऐसे जान पड़ते थे मानों पृथ्वीपर स्थित मुक्ति क्षेत्र में ही विराजमान हों तथा गुणों के द्वारा मुनियों में श्रेष्ठ थे।।81।। कनकशान्ति ने पास जाकर बार-बार नम्रीभूत हो उनसे आत्महित पूछा-हे भगवन्! मेरा हित कैसे हो सकता है ? यह पूछा। तत्पश्चात् तप के सागर मुनिराज उसके लिये इस प्रकार के वचन कहने के लिए उद्यत हुए।।82।। अज्ञान और राग से संक्लिष्ट रहने वाला प्राणी संसार के भीतर कुटिल रूप से भ्रमण करता है और विद्या तथा वैराग्य से युक्त प्राणी अखण्ड मर्यादा का धारी होता हुआ सिद्ध होता है।।83।। इसलिये तत्वों में चित्त लगाकर तुम्हें आत्म-हितकारी कार्य करना चाहिये क्योंकि जिनेन्द्र भगवान का सर्वजन हितकारी शासन दुःखों का नाश करने वाला है।।84।। इस प्रकार उन विपुल मुनिराज ने आत्मबोध को प्राप्त करने वाले उस कनकशान्ति के लिये संक्षिप्त रूप से तत्वों का विवेचन करने वाले वचनों के द्वारा हित का उपदेश दिया।।85।।

कनकशान्ति, उन तपस्वी मुनिराज से संसार का दुःख और मोक्ष का सुख जानकर संयमी बन गया।।86।। क्रीड़ा करता हुआ कनकशान्ति यद्यपि स्त्रियों से बहुत प्रेम करता था तथापि उसने अकस्मात् दिखे हुए मुनिराज से तपोलक्ष्मी को स्वीकृत कर लिया सो ठीक ही है क्योंकि भवितव्यता होनहार बलवती होती है।।87।। तदनन्तर उसकी प्रीति से ही दोनों देवियों ने उत्तम गुणों के उदय से युक्त सुमति गणिनी के समीप उत्कृष्ट तप को स्वीकृत कर लिया।।88।। वह बाह्य और भीतर निर्ग्रन्थ

अवस्था को स्वीकृत कर निरन्तर तप करने लगा। उसी समय उसे हिमचूल नामक शत्रु ने देखा।89।। हिमचूल, क्रोध से विद्याओं द्वारा निर्मित स्त्रियों तथा भयंकर राक्षसों के द्वारा उसके तप में विघ्न करने के लिये उद्यत हुआ।90।। उन मुनिराज के ऊपर वैर करने वाले उस हिमचूल को देखकर किसी धरणेन्द्र ने उसे शीघ्र ही भगा दिया सो ठीक ही है क्योंकि कौन मनुष्य साधु के द्वारा ग्राह्य नहीं होता? अर्थात् सभी होते हैं।91।। कालशुद्धि आदि से सहित तथा आत्म हित के लिये प्रयत्नशील उन एकाकी मुनिराज ने क्रम से पूर्वसहित द्वादशाङ्गों का अध्ययन किया ।92।। आचार निपुण मुनिराज ने अन्य मनुष्यों के लिये दुर्धर तप की स्थिति को धारण करते हुए भी चित्त से तृष्णा को दूर कर दिया था, यह आश्चर्य की बात थी।93।। जिस प्रकार मयूर निरन्तर घनागमोत्कण्ठ–मेघों के आगमन में उत्कण्ठित रहता है उसी प्रकार मुनिराज भी निरन्तर घनागमोत्कण्ठ–(घना आगमे उत्कण्ठायस्य स:) आगम विषयक तीव्र उत्कण्ठा से सहित थे और जिस प्रकार स्वभ्यस्तमार्गण:–अच्छी तरह वाणों का अभ्यास करने वाला धनुर्धारी मनुष्य अधिगुणं–डोरी से सति धर्म –धनुष को धारण करता है उसी प्रकार स्वभ्यस्तमार्गण:–अच्छी तरह गति आदि मार्गणाओं का अभ्यास करने वाले उन मुनिराज से अधिगुण–अधिक गुणों से युक्त धर्म–उत्तम क्षमा आदि धर्म को धारण किया था।94।। जिस प्रकार उत्तम कवि प्रशस्तयति–निर्दोष विश्राम स्थानों से युक्त वृत्तों–छन्दों का प्रवक्ता–श्रेष्ठ व्याख्याता होता है उसी प्रकार से मुनि भी प्रशस्त–निरतिचार यतिवृत्त–मुनियों के आचार के श्रेष्ठ वक्ता थे तथा वीतराग–राग रहित होकर भी भूपराग–राजाओं सम्बन्धी राग से कलङ्कित थे (परिहार पक्ष में भू–पराग–पृथिवी सम्बन्धी धूलि से मलिन शरीर थे।95।। किसी समय एक मास का उपवास कर वे मुनिराज निर्दोष देशों में एकाकी विहार करते हुए रत्नपुर नगर पहुँचे।96।। पात्र को आया देख श्रद्धा आदि गुणों से युक्त वहाँ के धृतषेण नामक राजा ने उन्हें दूध के आहार

से संतुष्ट किया।97।। मुनि की पात्रता और अपनी विशुद्ध श्रद्धा के कारण राजा ने देवों से पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये।98।।

निरन्तर देवों का संपात—आगमन होते रहने से जिसका सुरसंपात नाम पड़ गया था ऐसे नगर के उद्यान में वे मुनिराज रात्रि के समय प्रतिमा योग लेकर विराजमान थे।99।। यद्यपि हिमचूल ने उन्हें अपनी विद्याओं के द्वारा बहुत बाधा पहुँचायीं तो भी अचल धैर्य से युक्त होने के कारण वे भयभीत नहीं हुए और न समाधि से विचलित ही हुए।।100।। किन्तु पृथक्त्व वितर्क और एकत्व वितर्क शुक्लध्यान के द्वारा परमार्थ रूप से आत्मा का ध्यान कर तथा घातिया कर्मों को जीत कर कैवल्यलक्ष्मी को प्राप्त हो गये।।101।। उनके देवकृत तथा आध्यात्मिक ऐश्वर्य को अच्छी तरह देखकर हिमचूल क्रोध रहित हो गया और आश्चर्य से इस प्रकार विचार करने लगा।।102।। 'उपेक्षा करने वाले जीव का कुछ भी कार्य सिद्ध नहीं होता' यह कहना असत्य है क्योंकि इन्होंने उपेक्षा के द्वारा ही रागद्वेष को और मुझे भी जीता है।।103।। जितेन्द्रिय मनुष्य उत्कृष्ट सुख को प्राप्त होता है और विषयों की इच्छा करने वाला मनुष्य सुख के बहाने दुःख का ही सेवन करता है।।104।। इस जगत् में अक्षमा ही समस्त आपत्तियों की उत्कृष्ट जननी है और क्षमा ही मनुष्यों का कल्याण करने वाली है।।105।। ऐसा मन से निश्चयकर हिमचूल परम वैराग्य को प्राप्त हो गया तथा उन्हीं केवली को नमस्कार कर दिगम्बर मुद्रा का धारी होता हुआ दीक्षा को प्राप्त हो गया ।।106।। वह चिरकाल तक संयम धारण कर शतार स्वर्ग में देव हुआ सो ठीक ही है क्योंकि गुणी मनुष्यों के साथ वैर भी प्राणियों के लिए अमृत के समान आचरण करता है।।107।। राजाधिराज चक्रवर्ती ने कौटुम्बिक सम्बन्ध के कारण बढ़ी हुई भक्ति से आकर केवलज्ञान को प्राप्त करने वाले तथा सत्पुरुषों से पूजित अपने पौत्र कनकशान्ति की पूजा की।।108।। अनिन्दित—प्रशस्त मर्यादा से युक्त राजाधिराज—चक्रवर्ती ने ज्ञान के भण्डार स्वरूप कनकशान्ति से संशयापन्न पदार्थों को जानकर आत्महित न करने वाले

अपने आप की बहुत निन्दा की।।09।। पूर्व पुण्य से श्रेष्ठ साम्राज्य सुखों का उपभोग करते हुए राजा के हजारों पूर्व व्यतीत हो गये।।10।।

एक समय वैराग्योत्पादक मतिज्ञान को प्राप्त कर चक्रवर्ती ने काम सुख से अपना चित्त खींच लिया।।11।। वे विचार करने लगे कि प्रशमभाव से उत्पन्न होने वाले स्वात्माधीन सत्य सुख के रहते हुए भी अज्ञानी मानव विषयों की इच्छा से व्यर्थ ही खेद उठाता है।।12।। ऐसा निश्चय कर चक्रवर्ती ने अपने पुत्र सहस्रायुध को जो तेज से सूर्य के समान था पृथिवी का शासक बनाया।।13।। और स्वयं ने सत्पुरुषों का कल्याण करने वाले क्षेमंकर जिनेन्द्र को नमस्कार कर तीन हजार राजाओं के साथ दैगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली।।14।। जिन्होंने समस्त कर्म प्रकृतियों के विस्तार काअच्छी तरह विचार किया है ऐसे चक्रवर्ती—मुनिराज, तप में स्थित होते हुए भी क्षमापालनतत्पर—पृथिवी का पालन करने में तत्पर थे, यह आश्चर्य की बात थी (परिहार पक्ष में उत्तम क्षमा आदि दश प्रकार के धर्म को धारण करते थे।।17।। वे जिस प्रकार छत्र रत्न के छाया मण्डल के मध्य में स्थित होकर उज्ज्वल शोभा से युक्त रहते थे उसी प्रकार सूर्य के सन्मुख खड़े होकर भी उज्ज्वल शोभा से युक्त थे।।18।। उन्हें छह खण्ड के भूमण्डल की रक्षा का अभ्यास था, इसीलिये मानों वे प्रयत्न पूर्वक छह प्रकार के प्राणिसमूह की रक्षा करते थे।।19।। जिस प्रकार वे पहले नौ निधियों के द्वारा पर हित में प्रवृत्ति करते थे उसी प्रकार तपस्या करते हुए भी उत्कृष्ट श्रुत के द्वारा पर हित में प्रवृत्ति करते थे।।20।। जिस प्रकार वे पहले साक्षात् दण्ड—राज्यशासन को धारण करते हुए लोगों के पूज्य थे उसी प्रकार अब वीत दण्ड—मन वचन काय की प्रवृत्ति रूप दण्ड से रहित होने पर भी लोगों के पूज्य थे। उनकी बुद्धि दया से आर्द्र थी।।21।। दुखी प्राणियों का हित करने वाले वे मुनिराज यद्यपि तप से उत्पन्न हुए सूर्यातिशायी तेज को धारण कर रहे थे तो भी निर्वाण रुचि—कान्ति रहित थे यह आश्चर्य की बात थी (परिहार पक्ष में मोक्ष की रुचि से सहित थे)।।22।। तपस्या करने वाले वे मुनिराज यद्यपि रक्षा की विधि को जानते थे और युक्ति पूर्वक उन्होंने

विग्रह–युद्ध को नष्ट भी किया था तो भी उन्होंने अपने राजस् मोहं–रजोगुण प्रधान मोह को अथवा राज– संमोह–राज के महत्व को नष्ट कर दिया था। (परिहार पक्ष में वे गुप्तियों–के भेदों को अच्छी तरह जानते थे। और उन्होंने उपवास के द्वारा विग्रह–शरीर को कृश कर दिया था फिर भी राज–संबन्धी मोह से रहित थे।।123।।

तदनन्तर जो सुविचार अथवा सुबुद्धि से युक्त होकर अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षाओं में संलग्न रहते थे तथा मुक्ति प्राप्त करने की लालसा रखते थे ऐसे वे मुनिराज सिद्धगिरि पर एक वर्ष का प्रतिमा योग लेकर खड़े हो गये।।124।। उस पर्वत पर ग्रीष्म ऋतु में वे निकटवर्ती प्रचण्ड दावानल से घिर जाते थे और उससे ऐसे जान पड़ते थे मानों छोड़े हुए भी प्रताप के द्वारा सेवित हो रहे हों। भावार्थ–उन्होंने मुनिदीक्षा लेते ही प्रताप को यद्यपि छोड़ दिया था तो भी वह उनकी सेवा कर रहा था।।125।। वर्षा ऋतु में आकाश, यद्यपि इन्द्र नीलमणि के घड़ों के समान वर्षा कालीन मेघों के द्वारा यद्यपि उनका अभिषेक करता था तो भी वे उत्सिक्त–जल से अभिषिक्त नहीं हुए थे यह आश्चर्य की बात है। परिहार पक्ष में उत्सिक्त गर्वयुक्त नहीं हुए थे।।126।। जिस प्रकार अन्य लोगों को कम्पित कर देने वाली वायु के द्वारा मेरु पर्वत का कम्पन नहीं किया जाता उसी प्रकार अन्य लोगों को कम्पित कर देने वाली शीत लहर अथवा शत्रु समूह के द्वारा उनका कम्पन नहीं किया गया था।।127।। ऐसा जान पड़ता था मानों वनलताओं का बहाना लेकर लक्ष्मी ही जन्मान्तर के उपभोग के लिये उनके चरणों की उपासना कर रही थी।।128।। इस प्रकार तपस्या करते हुए उन मुनिराज को देखकर तीव्र क्रोध से अतिवीर्य और महाबल नामके महान् असुर उनके समीप आये।।129।। अश्वग्रीव के जो दो पुत्र पञ्चम भव में चक्रवर्ती के द्वारा मारे गये थे वे ही महान् असुर थे। तदनन्तर वे दोनों शत्रु उन मुनिराज का घात करने के लिये प्रवृत्त हुए।।130।। उसी समय रम्भा और तिलोत्तमा नामकी दो अप्सराएं उन मुनिराज की पूजा के लिये देवों तथा साज सामग्री के साथ आ रहीं थीं उन्हें देखकर वे असुर शीघ्र ही भाग

गये।॥31॥ उन अप्सराओं ने तीन प्रदक्षिणाएं देकर उन मुनिराज की दिव्यगन्ध आदि से पूजा की और श्रद्धा पूर्वक उनके शरीर से लताओं का वेष्टन दूर किया।॥32॥ इस प्रकार जो पीड़ा से रहित थे, कल्याण से युक्त थे तथा परिषहों को जीतने वाले थे ऐसे वे मुनिराज एक वर्ष का प्रतिमायोग समाप्त कर सुशोभित हो रहे थे।॥33॥

पिता की अत्यन्त कठिन तपस्या को सुनकर उनके गुणों में उत्सुक होते हुए तुम सहस्रायुध ने अपने पुत्र प्रीति–कर के लिए राज्य भार सौंप दिया।॥34॥ तथा शुभास्रव से युक्त हो उत्तम अभिप्राय वाले अनेक श्रेष्ठ राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली।॥35॥ वज्रायुध मुनिराज सिद्धगिरि पर विधि पूर्वक शरीर का परित्याग कर क्षण भर में स्वर्गों के ऊपर उपरिम ग्रैवेयक में जा पहुँचे।॥36॥ वहाँ वे शान्तभाव से सहित होते हुए भी नाम से अमितविक्रम थे, लक्ष्मी सहित थे, इकतीस सागर की आयु से सहित थे तथा देवों के स्वामी–अहमिन्द्र थे।॥37॥

वहाँ वे आश्चर्य कारक कान्ति से सहित, स्त्रियों के समागम से रहित तथा धर्मध्यान के रस से परिपूर्ण अत्यन्त शुक्ल शरीर को प्राप्त कर वक्ष स्थल पर पड़े हुए तीन लड़ के हार से ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों हृदय में स्थित रत्नत्रय से ही सुशोभित हो रहे हों। लीलापूर्वक सौमनस वन के पुष्पों को धारण करने वाला वह अहमिन्द्र वहाँ देवों के उत्तम सुख का उपभोग करने लगा।॥38॥ सहस्रायुध ने चिरकाल तक श्रेष्ठ संयम रूपी संपदा को धारण कर ईषत्प्रागभार नामक पर्वत पर विधिपूर्वक शरीर का त्याग किया। यद्यपि वे काङ्क्षा से रहित थे तो भी वहाँ अपने स्वामी वज्रायुध को देखने की इच्छा करते हुए के समान उसी उपरिम ग्रैवेयक में कान्तप्रभ नामके अहमिन्द्र हुए।॥39॥

इस प्रकार महाकवि 'असग' द्वारा विरचित शान्ति पुराण में वज्रायुध के ग्रैवेयक गमन का वर्णन करने वाला दशम सर्ग समाप्त हुआ।

एकादशः सर्गः

अथानन्तर जम्बूवृक्ष से चिह्नित, मध्यलोक का अलंकारभूत जम्बूद्वीप है। यह जम्बूद्वीप मेखला के मध्यमणि के समान समस्त द्वीप समुद्रों के मध्य में स्थित है।।1।। उसके पूर्व विदेह क्षेत्रों में सीता नदी के उत्तर तट पर स्थित पुष्कलावती देश है।।2।। उस देश में ज्ञानी जनों से परिपूर्ण पुण्डरीकिणी नगरी है जो कमलों से सहित शरद ऋतु की सरसी के समान अत्यधिक सुशोभित होती है।।3।। वह घनरथ उस नगरी का स्वामी था जो ज्ञानीजनों में अग्रसर था, भावी तीर्थंकर था, त्रिलोकीनाथ था तथा कमल के समान मुख से युक्त था।।4।। जिसकी आकृति मनोहर थी, जिसने समस्त कलाएं प्राप्त की थीं तथा जिसके नेत्र कमल के समान थे ऐसी मनोहार नाम की उसकी रानी थी।।5।। अमितविक्रम देव उस ग्रैवेयक स्वर्ग से च्युत होकर इन दोनों के जगत्प्रसिद्ध पराक्रम का धारक मेघरथ नामक पुत्र हुआ।।6।। जिसने तत्त्वमार्ग को जान लिया था, जो धैर्य का महासागर था तथा विनय का विधाता था ऐसे मेघरथ का शैशव—बाल्यकाल वृद्धावस्था के समान था।

भावार्थ—वह शैशव काल में ही वृद्ध के समान तत्ववेत्ता, धैर्यवान् तथा विनयवान् था।।7।। जिस प्रकार श्रेष्ठ वंश वृक्ष को विभूषित करने वाले अतिशय उज्ज्वल मुक्तामणि का जन्म परोपकार के लिए होता है उसी प्रकार श्रेष्ठ कुल को भूषित करने वाले निर्मल हृदय मेघरथ का जन्म परोपकार के लिये था।।8।। यद्यपि तेज के द्वारा उसकी ओर देखना कठिन था तो भी वह दया से आर्द्र हृदय था परम दयालु था। वह ऐसा जान पड़ता था मानों अपने भीतर पूर्ण चन्द्रमा को धारण करने वाला दूसरा सूर्य ही हो।।9।। जो लक्ष्मी का निवासभूत कमल होकर भी

कभी जल से संगत नहीं था (परिहार पक्ष में जड़—मूर्खजनों से संगत नहीं था) तथ कुल का श्रेष्ठ दीपक होकर भी प्रवृद्ध सुदशान्वित—बढ़ी हुई—बुझी हुई उत्तम बत्ती से सहित था (परिहार पक्ष में श्रेष्ठ वृद्धजन की उत्तम अवस्था से सहित था।) भावार्थ—वह लक्ष्मीमान् था, मूर्खजनों की संगति से दूर रहता था, कुल को प्रकाशित करने वाला था तथा वृद्ध के समान गम्भीर और विनयी था।॥0।। जो गुणवान् मनुष्यों की अद्वितीय अवधि था अर्थात् जिससे बढ़कर दूसरा गुणवान् नहीं था और जिसे निर्मल अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ था ऐसा वह मेघरथ शरीर से कृश होता हुआ भी पिता के साथ पृथिवी का भार धारण करता था।॥1।। विद्वज्जनों के लिए कल्पवृक्ष के समान यथेच्छ फल देने वाले जिस मेघरथ की सहज कृपा सदा विकसित रहती थी।॥2।।

तदनन्तर उसी राजा घनरथ की दूसरी रानी प्रीतिमती के कान्तप्रभ भी बहुत भारी प्रीति से दृढ़ दृढ़रथ नामक पुत्र हुआ।॥3।। मेघरथ, उस भाई पर स्वाभाविक स्नेह रस से आर्द्रहृदय रहता था सो ठीक ही है क्योंकि उनका पूर्वभव का सम्बन्ध वैसा ही था।॥4।। बड़े पुत्र मेघरथ ने प्रियभाषिणी प्रियंवदा और मनोरमपने के कारण माननीय मनोरमा नाम की अन्य, इस प्रकार दो कन्याओं को विधिपूर्वक विवाहा।॥5।। छोटे भाई दृढ़रथ की यद्यपि और भी सुन्दर स्त्रियाँ थीं परन्तु उनमें सुमति नाम की स्त्री चन्द्रमा के रोहिणी के समान प्रिय थी।॥6।। जिनके मुख कमल स्नेह युक्त प्रियाओं के कटाक्ष रूपी भ्रमरों के व्याप्त थे ऐसे वे दोनों धर्म और अर्थ पुरुषार्थ का विरोध न करते हुए सुखों का उपभोग करते थे।॥7।।

किसी समय दयावन्त राजा घनरथ स्वेच्छा से क्रीड़ा करते हुए पुत्रों के साथ सभा के बीच बैठे हुए थे। वहाँ उन्होंने युद्ध करते हुए दो मुर्गों को देखा। वे मुर्गे वेग से उछल उछल कर परस्पर प्रहार कर रहे थे,

चोंचों से एक दूसरे को काटते थे। इस तरह वे क्रोध से चिर काल तक युद्ध करते रहे परन्तु बहुत समय में भी एक दूसरे को जीतने के लिये जब समर्थ न हो सके तब राजा ने हँसकर बड़े पुत्र से कहा।।18–20।। हे वत्स! इन पक्षियों के जन्मान्तर से आये हुए वैर को तथा इनके न थकने के कारण को कुछ जानते हो तो यथावत्—जैसा का तैसा कहो।।21।। इस प्रकार उन पक्षियों के यथार्थ ज्ञान को जानने की इच्छा करने वाले पिता के द्वारा पूछा गया मेघरथ क्रम से इस प्रकार कहने के लिये उद्यत हुआ।।22।।

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में विस्तार से अत्यन्त प्रसिद्ध रत्नपुर नामका नगर है।।23।। वहाँ ये दोनों, प्राणियों के साथ निर्दयता का व्यवहार करने वाले गाड़ीवान् थे। उनमें से एक का नाम धन्य था जो नाम मात्र से धन्य था और दूसरे का नाम भद्रक था परन्तु वह भी अभद्र बुद्धि था।।24।। किसी एक समय श्रीनदी के घाट पर बैलों की टक्कर हो जाने से दोनों को क्रोध आ गया और उसके कारण दोनों ने एक दूसरे को मार डाला।।25।। पश्चात् वे जामुन और जम्बीर के वृक्षों से सुशोभित जाम्बूनद नामक नदी के तीर पर चलते फिरते ऊँचे पर्वतों के समान आभा वाले हाथी हुए।।26।। वहाँ भी परस्पर दांतों के प्रहार से जिनका आंखों का समीपवर्ती प्रदेश तथा मस्तक विदीर्ण हो गया था ऐसे उन दोनों हाथियों ने परस्पर एक दूसरे को मारा।।27।।

अथानन्तर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अपनी कान्ति से उत्तर कौशल देश को विभूषित करने वाली अयोध्या नगरी है।।28।। राज कार्य में निपुण तथा अन्तरङ्ग बहिरङ्ग शत्रुओं को जीत लेने के कारण शत्रुञ्जय नाम से प्रसिद्ध राजा उस अयोध्या नगरी का शासन करता था।।29।। उसी अयोध्या में अहीरों का स्वामी नन्दिमित्र रहता था। उसकी विस्तृत बस्ती में वे दोनों, हाथियों के समान विशालकाय भैंस हुए।।30।। वे भैंसे राजा के आगे युद्ध करते हुए मरे और मर कर उसी अयोध्या में मेंढ़ा हुए। मेंढ़ा पर्याय में भी दोनों युद्ध द्वारा एक दूसरे को

मार कर मरे।।31।। अब ये मुर्गा नाम के उद्दण्ड पक्षी हुए हैं तथा पूर्वभव सम्बन्धी क्रोध के कारण इनके द्वारा इस प्रकार बैर बढ़ाया जा रहा है।।32।। इस प्रकार कषाय से कलुषता को प्राप्त हुए जीव शरीर रूपी पींजड़ा को ग्रहण करते और छोड़ते हुए संसार में भ्रमण करते रहते हैं।।33।। इनके न थकने का कारण भी सुनने के योग्य है! अहो भव्यजनों! सुनो। यह कारण छिपे हुए विद्याधर राजाओं के द्वारा विस्तृत किया गया है।।34।।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में स्थित शोभायमान विजयार्ध पर्वत पर उत्तर श्रेणी के अद्वितीय आभूषण स्वरूप हिरण्यनाभ नामका नगर है।।35।। जिसका मंत्री आदि मूल वर्ग और सेना का समूह सुरक्षित था तथा सुमेरु के समान उन्नत (उदार) था ऐसा गरुड़वेग नामका राजा उस नगर का रक्षक था।।36।। उसकी धैर्य से युक्त धृतिषेणा नामकी स्त्री थी। उन दोनों के भाग्य और नय विज्ञान से सहित दो पुत्र हुए।।37।। उनमें बड़ा पुत्र चन्द्रतिलक नामका था जो कुल के तिलक के समान था तथा छोटा पुत्र नभस्तिलक था।।38।। वे एक बार अपनी इच्छा से फूले हुए नमेरु वृक्षों से युक्त सुमेरु पर्वत पर विहार कर रहे थे। वहाँ उन्होंने एक जिनालय में सागर चन्द्र नामक मुनि को देखा।।39।। उन दोनों भव्यों ने सत्पुरुषों के पूज्य भव्योत्तम मुनिराज की चूडारत्न की किरण रूप मञ्जरी से पूजा कर अपना अतीतभव पूछा।।40।।

तदनन्तर मुनिराज अवधिज्ञान को परिवर्तित कर—इस ओर संलग्न कर इस प्रकार कहने लगे। वे मुनिराज बोलते समय निर्मल वाक्यों के द्वारा उन भव्यों के हृदय में विद्यमान अन्धकार को नष्ट कर रहे थे।।41।। द्वितीय धातकी खण्ड द्वीप के ऐरावत क्षेत्र में पृथिवी के तिलक के समान पृथिवी तिलक नाम का नगर प्रकाशमान है।।42।। जिसका मन निर्भय था तथा जो शत्रुओं की ओर अपना ध्यान रखता था ऐसा महा पराक्रमी अभयघोष नाम का राजा उस नगर का रक्षक था।।43।। जिस प्रकार वेला समुद्र का आभूषण होती है उसी प्रकार कनकलता नामकी कृशाङ्गी रानी उस महान् संपत्ति के धारक राजा की आभूषण थी।।44।।

उस नीतिमान् राजा ने जिस प्रकार पृथिवी में कोष (खजाना) और दण्ड (सेना) उत्पन्न की थी उसी प्रकार उस कनकलता रानी में जयन्त और विजय नामके दो पुत्र उत्पन्न किये।।45।। राजा अभयघोष ने सुभौमनगर के स्वामी शङ्ख नामक राजा की पृथिवीषेणा नामक अन्य पुत्री के साथ विवाह कर लिया।।46।। राजाओं का स्वामी अभयघोष उस नवविवाहिता रानी में आसक्त हो गया और महादेवी कनकलता में विरक्त हो गया सो ठीक ही है क्योंकि कामी मनुष्य नव प्रिय होते हैं—नवीन स्त्री के साथ प्रेम करते ही हैं।।47।। पृथिवीषेणा के सौभाग्य से लुभाया हुआ राजा सुन्दर महलों की पंक्तियों तथा नवीन बाग बगीचों में उसे रमण कराता था।।48।। अपना सौभाग्य निःसार हो जाने से प्रधान रानी ने उससे राजा को अलग करने के लिए मन्त्र तन्त्र कराया।।49।। वसन्त ऋतु आने पर उसने अपनी सखियों के द्वारा राजा के लिए मन्त्र और धूप से संस्कार की हुई कृत्रिम माला दिखला कर आमन्त्रित किया।।50।। उस माला को देखकर राजा उसी क्षण वल्लभा—पृथिवीषेणा—नामक प्रियस्त्री से विरक्त हो गया सो ठीक ही है क्योंकि मणि मन्त्र और औषधी की शक्ति से क्या नहीं सिद्ध किया जाता?।।51।। मानवती पृथिवीषेणा ने राजा के चित्त को कुछ विमुख जानकर उनके द्वारा मनाये जाने पर भी फिर भोगों को ग्रहण नहीं किया।।52।। किन्तु दत्त नामक मुनिराज के समीप अपने उत्तम शरीर को संयम का साधन कर लिया अर्थात् आर्यिका के व्रत लेकर तपस्या करने लगी सो ठीक ही है क्योंकि भव्यता का फल वही है।।53।। खिन्न मन से व्याकुल होने पर भी राजा ने धैर्यपूर्वक पृथिवीषेणा की विरहजनित पीड़ा को किसी किसी तरह शान्त किया।।54।। पश्चात् उसने संसार शरीर और भोगों की निःसारता का विचार कर अनन्त– जित को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया तथा निराकुल हो कर उन्हीं के पास तप ग्रहण कर लिया।।55।। जयन्त और विजय भी वंश परम्परा से आई हुई लक्ष्मी को तृण के समान अनादर से छोड़कर पिता के साथ दीक्षित हो गये।।56।। अभयघोष मुनि तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध योग्य षोडश कारण

भावनाओं का शास्त्रानुसार अच्छी तरह चिन्तवन कर तथा धैर्य से शरीर छोड़कर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र पद को प्राप्त हुए।।57।। उनके पुत्र जयन्त और विजय भी उनके स्नेह से ही मानों उसी अच्युत स्वर्ग में परस्पर प्रीति को धारण करने वाले सामानिक देव हुए।।58।। वह अच्युतेन्द्र, अच्युत स्वर्ग से च्युत हो कर राजा हेमाङ्गद की मेघमालिनी रानी के घनरथ नामका निष्कलङ्क पुत्र हुआ।।59।। इन्द्रों से दो कल्याणक प्राप्त कर वह कमल लोचन, पुण्डरीकिणी नगरी की रक्षा करता हुआ सुशोभित हो रहा है।।60।। जयन्त और विजय स्वर्ग के सुख भोगकर समस्त विद्याधरों को नम्रीभूत करने वाले आप दोनों विद्याधर राजा हुए हैं।।61।। इस प्रकार उन मुनिराज से अपने पूर्वभव सुनकर तुम्हारे वे पुत्र आपको देखने की इच्छा से वेग पूर्वक आकाश द्वारा यहाँ आये थे।।62।। आप इन मुर्गों का युद्ध देखना चाहते हैं यह जानकर उन्होंने इन मुर्गों को अपनी विद्या द्वारा इस प्रकार लड़ाया है।।63।। इस प्रकार उनका वृत्तान्त कह कर जब राजा घनरथ के पुत्र मेघरथ चुप हो रहे तब उन विद्याधर राजाओं ने आकाश में अपने आप को प्रकट किया।।64।।

उन्होंने जन्मान्तर से आयी हुई प्रीति के बहुत भारी भार से ही मानों नम्रीभूत शिर से मन के साथ पिता के चरणों की पूजा की।।65।। राजा घनरथ यद्यपि असाधारण पुरुष थे तथापि उन्होंने उनका गाढ़ आलिङ्गन किया सो ठीक ही है क्योंकि जन्मान्तर से आया हुआ प्रेम किन्हें हर्ष उत्पन्न नहीं करता?।।66।। राजा ने चिरकाल तक आलिङ्गन कर जिन्हें छोड़ा था तथा प्रीति से जिनके मुख कमल विकसित हो रहे थे ऐसे उन दोनों ने बार बार राजा के चरणयुगल को नमस्कार किया।।67।। युवराज ने भी नमस्कार करने वाले उन दोनों को प्रीति पूर्वक देखा। युवराज उन्हें भाई के समान सन्मान दे रहा था तथा उनकी प्रतीति कर रहा था।।68।। जिन्हें अपने जन्मान्तर का वृत्तान्त स्मृत हो गया था ऐसे उन दोनों का राजा ने खूब सन्मान किया और अपने हाथ के स्पर्श से उनके आगमन का श्रम दूर कर दिया।।69।। उनकी प्रीति के

कारण जो योग्य सन्मान से बढ़े हुए स्नेह से सहित थें ऐसे दोनों विद्याध र चिर काल बाद राजा से विदा लेकर अपने स्थान पर चले गये।।70।। वहाँ जा कर संसार वास से भयभीत दोनों विद्याधर राजा के पुत्रों को लक्ष्मी सौंपकर तथा गोवर्धन मुनि को नमस्कार कर साधु हो गये।।71।। तदनन्तर मुर्गों ने अपने भवान्तर जानकर कर्मजन्य वैर को छोड़ दिया तथा शरीर का परित्याग कर वे भूतरमण नामक अटवी में भूतों के नायक और प्रसिद्ध अचिन्त्य प्रभाव से शोभित व्यन्तर देव हुए।।72–73।।

तदनन्तर किसी समय लौकान्तिक देवों ने भक्ति पूर्वक नमस्कार कर राजा घनरथ को यह कह कर संबोधित किया कि यह तप का उत्कृष्ट काल है। राजा घनरथ स्वयं भी बोध को प्राप्त हो रहे थे।।74।। तदनन्तर देवेन्द्रों के द्वारा जिनका सत्कार किया गया था ऐसे उन श्रीमान् राजा घनरथ ने वंश परम्परा की लक्ष्मी मेघरथ पुत्र के लिए सौंपकर तप धारण कर लिया।।75।। अग्रज मेघरथ ने युवराज पद के बहाने समस्त पृथिवी का भार छोटे भाई दृढ़रथ के लिए सौंपकर प्रेम को विस्तृत किया।।76।।

किसी अन्य समय दो भूत आकाश से मेघरथ के पास आये और हाथ जोड़ नमस्कार कर हर्ष से इस प्रकार के वचन कहने लगे।।77।। हे भद्र! आपके किए हुए उपदेश से हम ऐसी इस गति को प्राप्त हुए हैं जो विपत्तियों का स्थान नहीं है तथा सुन्दर और आश्चर्यकारी है।।78।। आप से जिन्हें आत्मबोध प्राप्त हुआ है तथा किस कार्य के द्वारा हम आपके उपयोग को प्राप्त होंगे, ऐसा विचार कर, जो निरन्तर दुखी रहते हैं ऐसे हम दोनों की विमूढता—अज्ञानता को आप देखें।।79।। हे स्वामिन्! यद्यपि आप कृतकृत्य हैं—आपको किसी कार्य की इच्छा नहीं है अतः हम आपका क्या कर सकते हैं? तथापि सामान्य सेवकों को जैसी आज्ञा दी जाती है वैसी आज्ञा देकर हम दोनों को अनुगृहीत कीजिये।।80।। इस प्रकार राजा के लिये अपनी बात कहकर वे भूत चुप हो रहे। राजा मेघरथ उनकी कृतज्ञता से संतुष्ट होते हुए उनसे इस प्रकार कहने

लगे।।81।। साधुजन—सत्पुरुष अपने कार्य में अलस; दूसरे के कार्य में निरन्तर तत्पर, स्वच्छ हृदय, कृतज्ञ, पाप से डरने वाला और सत्यवादी होता है।।82।। जिनका चित्त सौहार्द से भरा हुआ है ऐसे आप लोगों के इस आगमन से ही अनुमान होता है कि साधु पुरुष के यह समस्त गुण आप दोनों में परिपूर्ण हैं।।83।। क्योंकि अच्छे सहायकों से सहित मनुष्यों के अभिलषित कार्यों की सिद्धियाँ होती हैं अतः आप जैसे मित्रों से हमारा कौन कार्य पूर्णता को प्राप्त न होगा?।।84।। यद्यपि मुझे अवधिज्ञान है तथापि मनुष्य लोक में विद्यमान पवित्र अकृत्रिम जिनालयों के दर्शन करने की मेरी भावना है।।85।। इस प्रकार राजा अपने मनोरथ को प्रकट कर चुप हो गये। तदनन्तर अपने लिये अवसर प्राप्त कर प्रसन्न भूत इस प्रकार कहने लगे।।86।।

आप दर्शन करने वाले हैं, हम दोनों पहुँचाने वाले हैं, जिनालय दर्शनीय है और जिनेन्द्र देव वन्दनीय हैं इन चारों माङ्गलिक कार्यों से युक्त दूसरा कुछ भी कार्य तीनों जगत् में नहीं है।।87।। इतना कहकर उसी क्षण अपने कन्धे पर बैठे हुए राजा के लिये उन भूतों ने समस्त अकृत्रिम जिनालय दिखलाये।।88।। अपने अवधिज्ञान के द्वारा जिन्हें पहले देख लिया था ऐसे जिनालयों को पश्चात् पुनरुक्त के समान देखकर राजा ने यथाक्रम से उनकी वन्दना की।।89।। भूतों की सहायता से क्षणभर में तीर्थयात्रा को पूराकर राजा मेघरथ बहुत प्रसन्न हुए सो ठीक ही है क्योंकि वाञ्छित कार्य के सिद्ध होने पर कौन सुखी नहीं होता है?।।90।। 'कहाँ जाकर आकाश से आये हैं' इस प्रकार के कौतूहल से युक्त नगरवासी जिन्हें देख रहे थे ऐसा भूतवाहन—भूतों के कन्धे पर बैठे हुए राजा ने नगर में प्रवेश किया।।91।। स्वामी मेघरथ ने राजभवन को प्राप्तकर शीघ्र ही उन भूतों को विदा कर दिया। परन्तु प्रीति युक्त वचनों से ही विदा किया था हृदय से नहीं।।92।। तदनन्तर क्षणभर में ही मानों सभा में पहुँचे हुए राजा ने प्रीति से अनुमोदना करने वाले सभासदों को अपनी आँखों देखा कहा।।93।। इस प्रकार राज मार्ग में स्थित होने पर भी जिनकी आत्मा धर्म में अनुरक्त थी तथा जो प्रशमगुण में स्थित

थे ऐसे वे राजा मेघरथ संयम के बिना भी संयमियों में प्रधान हो रहे थे।94।।

सत्पुत्र की उत्पत्ति के लिये कामभोग की इच्छा करने वाले राजा मेघरथ की प्रियमित्रा रानी में नन्दिवर्धन नामका पुत्र उत्पन्न हुआ।95।। दृढ़रथ की भी सुमति नाम की स्त्री में सद्बुद्धि का धारक, कुबेर तुल्य धनसेन नामक पुत्र हुआ।96।। किसी समय अन्तः पुर के आग्रह से वे मेघरथ रथ पर सवार हो चैत्रमास में देवरमण वन को देखने के लिये गये।97।। इच्छानुसार वसन्त लक्ष्मी का उपभोग कर मधुतुल्य राजा मेघरथ देवरमण वन के उस क्रीड़ा पर्वत पर बैठ गये जिसके बीच में वेदिका–बैठने का आसन बना हुआ था।98।। राजा के स्मरण करते ही दो भूत उनके पास आ गये और नाना प्रकार के सुन्दर नृत्य आदि के द्वारा क्रीड़ा करते हुए उन्हें हर्ष उपजाने लगे।99।। इस प्रकार स्त्रियों सहित राजा हर्ष से उस क्रीड़ा पर्वत पर बैठे थे परन्तु अकस्मात् ही वह क्रीडा पर्वत चञ्चल हो उठा और उसके पाषाण इधर–उधर विचलित होने लगे।।100।। भयभीत स्त्रियों के आलिङ्गन सम्बन्धी सुख में आसक्त होने पर भी उन्होंने बायें पैर के अंगूठा से दबाकर उस पर्वत को फिर से स्थिर कर दिया।।101।। तदनन्तर प्रलय काल की आयु के आघात से क्षुभित समुद्र के भारी शब्द के समान चारों ओर अत्यधिक आर्त्तनाद उत्पन्न हुआ।।102।। उसी समय कोई विद्याधरी आकाश से प्रकट हुयी जो अश्रुपूर्ण लोचनों से युक्त थी, हाथ जोड़े हुयी थी पतिव्रता थी और उनसे पति की भीख माँग रही थी।।103।। अन्तर्गत शोक रूपी अग्नि की दाह से जिसका मुखकमल मुरझा गया था ऐसी वह विद्याधरी सज्जनों से स्नेह करने वाले सज्जन मेघरथ को नमस्कार कर इस प्रकार कहने लगी।।104।।

महाबलवान् पुरुष द्रोह करने वाले भी क्षुद्रजनों से कुपित नहीं होता है क्योंकि मगर मच्छों के द्वारा आघात को प्राप्त होने पर भी समुद्र उन्हें

दूर नहीं करता है।॥05॥जिसके चित्त को पा कर एक ही कृपा अनन्तपने को प्राप्त हो गयी है ऐसे आप जीवों को अभय और सत्पुरुषों को स्वामित्व देने के लिये समर्थ हैं।॥06॥हे जगत् के स्वामी! आपके बायें पैर के अंगूठे के दबाने से जो अत्यन्त दुखी हो रहा है तथा अत्यधिक चिल्ला रहा है ऐसे मेरे पति पर प्रसन्न होइये।॥07॥उस विद्याधरी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर दयालु राजा ने पर्वत को दबाने वाला अगूँठा ढीला कर लिया।॥08॥तदनन्तर रसातल से शीघ्र ही निकल विद्याधर राजा ने जिसका मुकुटबन्धन अस्त व्यस्त हो गया था ऐसे शिर से राजा मेघरथ को प्रणाम किया।॥09॥थका हुआ वह विद्याधर राजा अपनी स्त्री के आंचल द्वारा की हुई हवा से उस तरह सुखी नहीं हुआ था जिस तरह उस राजा के अतिशय प्रसन्न अवलोकन से हुआ था।॥10॥क्षणमात्र ठहर कर तथा विश्राम कर जब वाणी निकलने लगी तब उस विद्याधर राजा ने हाथ जोड़कर राजा घनरथ से इस प्रकार कहा।॥11॥

मैं निर्लज्ज अपनी चपलता के उद्रेक को क्या कहूँ? मेरे जीवित रहने का कारण आपकी महत्ता ही है।॥12॥महात्मा स्वभाव से ही दयालु होते हैं क्योंकि भीतर सुगन्धित जल से चन्दन के वृक्ष किसके द्वारा सींचे गये हैं? भावार्थ—जिस प्रकार चन्दन के वृक्ष स्वभाव से ही सुगन्धित होते हैं उसी प्रकार महापुरुष स्वभाव से ही दयालु होते हैं।॥13॥जिस प्रकार सदा उन्मार्ग में चलने वाली आँधी के द्वारा पृथिवी की धूलि सब ओर से व्याकुल हो जाती है उसी प्रकार सदा कुमार्ग में प्रवर्ताने वाली अक्षमा—क्रोधपरिणति के द्वारा क्षुद्र जीव सब ओर से व्याकुल कर दिया जाता है।॥14॥घात करने के इच्छुक तथा समीप में वर्तमान जैसे शत्रु को क्षमा करने के लिए अन्य नीतिमान् राजा समर्थ नहीं है।॥15॥

इस प्रकार मुझ दुष्ट बुद्धि ने यद्यपि आपका अपराध किया है तथापि आपका मुख प्रसाद मधुर नेत्रों से सहित है—आप मुझे प्रसन्नता पूर्ण मनोहर दृष्टि से देख रहे हैं। आपका मुख देख मैं विदीर्ण नहीं हो रहा हूँ—लज्जा से विखिर नहीं रहा हूँ यह आश्चर्य की बात है।॥16॥

इस प्रकार विद्याधर राजा अपने आप के प्रति शोक कर—पश्चात्ताप से दुःखी होकर चुप हो रहा सो ठीक ही है क्योंकि कुलीन मनुष्य असत् कार्य करके भी पीछे पश्चात्ताप करता है।।17।।

उस विद्याधर राजा के बहुत भारी सौन्दर्य और ऐश्वर्य को देखते हुए राजा मेघरथ भी जब आश्चर्य को प्राप्त हो रहे थे तब साधारण मनुष्य की क्या कथा है?।।18।। तदनन्तर मित्रों से प्रेम करने वाले उन राजा मेघरथ से प्रियमित्रा ने पूछा जिनका कि ज्ञान रूपी द्रव्य—पुद्गल द्रव्य में किसी बड़े दीपक के समान प्रकाशमान हो रहा था।।19।। यह महानुभाव विद्याधर किस नाम वाला है? किसका पुत्र है? और किस शुद्ध कर्म से इसकी यह लक्ष्मी विस्तृत हो रही है?।।20।। हे देव! इस दम्पति का पूर्वभव का सम्बन्ध कैसा है? क्योंकि इस स्त्री का इस पुरुष में अकृत्रिम प्रेम दिखायी दे रहा है।।21।। हे आर्यपुत्र! यह सब आप प्रारम्भ से बताइये क्योंकि लोक में आपसे समस्त आश्चर्य उत्पन्न होते हैं।।22।। इस प्रकार रानी प्रियमित्रा के द्वारा पूछे गये राजा मेघरथ, गम्भीर ध्वनि से पर्वत की गुहा को मुखरित करते हुए धीरता पूर्वक बोले।।23।।

पुष्कर द्वीप के भरत क्षेत्र में एक शङ्खपुर नामका नगर है जो कान्ति से ऐसा जान पड़ता है मानों दूसरा स्वर्ग ही हो।।24।। उस नगर के राजा उदार का राजगुप्त नामका एक महावत था जो हस्तिविज्ञान में कुशल था, राजा का प्रिय भी था परन्तु अत्यन्त दरिद्र था।।25।। जिसे देखकर मूर्ख मनुष्य भी सदा यह मानने लगता था कि जीवों की सम्पत्ति के हेतु विद्या तथा व्यवसाय आदि नहीं है।।26।। उसकी समान कुल और समान शील वाली शङ्खिका नामकी स्त्री थी जो प्रीति और विश्वास का स्थान थी तथा ऐसी जान पड़ती थी मानों उसकी मूर्तिधारिणी मनोवृत्ति ही हो।।27।। जिसकी बुद्धि धर्म में तत्पर रहती थी ऐसे उस महावत ने एक बार शङ्खपर्वत पर विद्यमान, तीन गुप्तियों से सहित सर्वगुप्त नामक मुनिराज के पास जा कर उन्हें नमस्कार किया।।28।।

स्त्री सहित उन महावत ने उस मुनिराज से श्रावक का धर्म ग्रहण कर द्वात्रिंशत् कल्याण नाम का उपवास किया।।29।। महाधैर्यशाली उस महावत ने उपवास के पश्चात् चर्या के समय घर पर पधारे हुए व्रतधर मुनिराज को प्राप्त कर हर्षित हो आहार से संतुष्ट किया।।30।। यद्यपि वह महावत शमभाव में स्थित था--ग्रह त्यागकर दीक्षा लेना चाहता था तो भी स्त्री के चारित्र से सुशोभित प्रेम से रुककर कुछ समय तक गृहस्थावस्था में उदासीन भाव से स्थित रहा।।31।। आत्मज्ञान और उपशमभाव से सहित उस धीर वीर ने अपने संयमसुवासित मन को संयम में निश्चल किया।।32।। सौम्य बुद्धि से युक्त उस दरिद्र वैश्य (महावत) ने समाधिगुप्त मुनि के चरणों को नमस्कार कर स्त्री के साथ तपश्चर्या को स्वीकृत कर लिया।।33।। निर्ग्रन्थ मुनि ने एकाग्रचित से आचाराङ्ग--चरणानुयोग के शास्त्रों का स्मरण कर आचार शास्त्र के अनुसार आचाम्लवर्धन नामका उपवास किया।।34।। पश्चात् चार आराधनाओं की आराधना कर तथा बांसों के वन में शरीर छोड़कर वह दश सागर की स्थिति वाले ब्रह्मलोक में उत्तम देव हुआ।।35।। शङ्खिका भी अपने कर्म से सौधर्म स्वर्ग में देवी हुई सो ठीक ही है क्योंकि लोक में परिणामों के वश से स्त्री और पुरुषों की भिन्न भिन्न गति होती है।।36।। जिसका महान् अभ्युदय शोभायमान था तथा जिसने शत्रुओं को समाप्त कर दिया था ऐसा विद्युद्रथ नामका राजा संपूर्ण रूप से विजयार्ध पर्वत का शासन करता था।।37।। जिस प्रकार इन्द्र की इन्द्राणी होती है उसी प्रकार उस विद्युद्रथ की मानसवेगा नामकी महादेवी--पट्टरानी थी। वह मानसवेगा सुन्दर थी तथा गुणों में निमेषरहित नेत्रों वाली--देवी थी।।38।। पुत्र की इच्छा से विकल रहने वाले उन दोनों महानुभावों के यह देव हेमरथ नामका सत्यवादी तथा निष्कलङ्क बुद्धि का धारक पुत्र हुआ।।39।। तदनन्तर मन्त्री आदि प्रजाजनों को अनुरक्त करते हुए उस लक्ष्मीमान् पुत्र ने पिता की लक्ष्मीवृद्धि की सो ठीक ही है क्योंकि पुत्र कुलदीपक--कुल को प्रकाशित करने वाला होता

है।।40।। वह शङ्खिका भी स्वर्ग से चय कर तथा शुभगतियों को प्राप्त कर इस समय उसकी पवनवेगा नामकी स्त्री हुई है।।41।। कर्मोदय की विषमता से प्राणियों का प्रेमी जनों के साथ हजारों जन्मों तक विरह रहता है और कर्मोदय की समानता होने पर समागम होता है।।42।। जिनधर्म के अनुराग से अमितवाहन की सेवा कर वापिस आते हुए इस मानी का विमान आकाश में अटक गया।।43।। यहाँ बैठे हुए मुझे देखकर इसने समझा कि विमान के रुकने का कारण यही है इसलिए यह इस पर्वत को जड़ से फेंकने की चेष्टा करने लगा।।44।। इस प्रकार राजा मेघरथ अपनी प्रिया के लिए विद्याधर राजा का पूर्वभव पूर्णरूप से कह कर चुप हो गये।।45।।

तदनन्तर विद्याधर राजा, मेघरथ से अपना पूर्वभव सुनकर प्रसन्न हुआ सो ठीक ही है क्योंकि सत्पुरुषों के द्वारा कहा हुआ अपना वृत्तान्त किनके हर्ष के लिए नहीं होता?।।46।। तदनन्तर उसी समय घनरथ मुनिराज शुक्ल ध्यान से चार घातिया कर्मों को नष्ट कर निर्मल आर्हन्त्य लक्ष्मी—अनन्त चतुष्टय रूप विभूति को प्राप्त हुए।।47।। देवों का आगमन देख राजा मेघरथ पापों को नष्ट करने वाले उन जिनराज के चरणों को नमस्कार करने के लिए हेमरथ के साथ गये।।48।। तदनन्तर जो अत्यन्त कौतुक से युक्त था, अतिशय श्रेष्ठ था, पवित्र था, समुन्नत था, और लक्ष्मी से सहित था ऐसा उन जिनराज का स्थान राजा मेघराज ने प्राप्त किया।।49।।

जो चौंतीस गुणों से सहित होकर भी एक थे (परिहार पक्ष में अद्वितीय थे), त्रिदशोपासित—देवों के द्वारा अच्छी तरह उपासित हो कर भी वीतत्रिदश—देवों से रहित थे (पक्ष में बाल, यौवन और वृद्ध इन तीन अवस्थाओं से रहित थे) तथा सर्व हितकारी होकर भी उग्रशासन कठोर आज्ञा से युक्त (पक्ष में अनुल्लङ्घनीय शासन से सहित) थे।।50।। जो भीतर हजारों सूर्य समूहों के समान दैदीप्यमान केवलज्ञान रूप तेज से सहित थे तथा बाहर अपने शरीर के दैदीप्यमान भामण्डल रूप तेज से

युक्त थे।॥51॥ जो मानसिक व्यथा से रहित थे, कृतकृत्य थे, निष्कलंक थे, लक्ष्मी से परिपूर्ण थे, अविनाशी थे, स्वभाव से सुन्दर थे और विद्याओं के महास्वामी थे।॥52॥ ऐसे निरञ्जन—कर्म कालिमा से रहित, ऐश्वर्य सम्पन्न तथा भव्य जीवों को आनन्दित करने वाले उन जिनराज घनरथ केवली को राजा मेघरथ ने विद्याधर राजा हेमरथ के साथ प्रणाम किया।॥53॥ तदनन्तर उनके वचनामृत को पीकर जो सचमुच ही तृष्णा रहित हो गया था तथा मुक्ति सुख से लुभा रहा था ऐसे हेमरथ ने दीक्षा ले ली।॥54॥

उन जिनेन्द्र भगवान् के सत्पुरुषाराधिक चरणों की भक्ति से आराधना कर तथा श्रुतिसुभग वचन सुनकर तप के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित होने वाले अपने मन को जिन्होंने बल पूर्वक रोका था ऐसे समय के ज्ञाता राजा घनरथ समय की प्रतीक्षा कर अपने नगर को पुनः वापिस गये।॥55॥ इस राजा के सिवाय धीर, दयालु, दान प्रेमी, सन्मार्ग का ज्ञाता तथा निर्भय दूसरा राजा नहीं है इस प्रकार गुणों के प्रेमी लोग जिनकी उच्च स्वर से घोषणा कर रहे थे ऐसे राजा घनरथ अपनी विरुदावली को सुनते हुए हर्ष से नगरी में प्रविष्ट हुए। प्रवेश करते समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानों नगरी के भवन अपने ऊपर फहराने वाली ध्वजा रूप लम्बे हाथों से उन्हें बुला ही रहे थे।॥56॥

इस प्रकार महाकवि असग द्वारा विरचित शान्तिपुराण में मेघरथ की उत्पत्ति का वर्णन करने वाला ग्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ।

द्वादशः सर्गः

अथानन्तर पृथिवी के भर्ता और धन के इच्छुक–निर्धन मनुष्यों का उद्धार करने वाले वे राजा मेघरथ यद्यपि असम थे–समा–वर्षों से रहित थे (परिहार पक्ष में उपमा से रहित थे) तथापि उनकी सुख से सहित कितनी ही समा–वर्षें व्यतीत हो गयी थीं।।।। किसी समय कार्तिक मास का शुक्ल पक्ष आने पर अव्यर्थ आज्ञा के धारक राजा मेघरथ ने नगरी में चारों ओर घोषणा कराई कि कोई जीव किसी जीव का घात न करे।।2।। और स्वयं तेला का नियम लेकर अपने भक्तजनों के साथ जिनेन्द्र भगवान् की आष्टाह्निक पूजा करते हुए जिन मन्दिर में बैठ गये।।3।। अन्य समय एक भयभीत कबूतर स्पष्ट वाणी से रक्षा करो, रक्षा करो इस प्रकार राजा से कहता हुआ उनकी शरण में आया।।4।। उसके पीछे ही बल से उद्धत एक बाज पक्षी भी जो उस कबूतर को मारना चाहता था, आ पहुँचा। आश्चर्य से चकित सभासद उस बाज पक्षी की ओर देख रहे थे। आते ही बाज ने राजा से इस प्रकार कहा।।5।। अब आप इस समय अच्छे और बुरे–सब जीवों पर समवृत्ति रक्खे हुए हैं और शान्तभाव में स्थित हैं तब मुझसे इस पक्षी की रक्षा करने का आपको क्या अधिकार है?।।6।। यदि आप ऐसा मानते हैं कि भयभीत पक्षी की रक्षा करने से धर्म होता है तो इस तरह मुझ भूखे का मरण होने से अधर्म भी तो होगा।।7।। आपकी सब प्राणियों पर स्वाभाविक दया दिखायी देती है परन्तु मेरे पाप से वह दया भी एक मेरे ही विषय में निरपेक्षा हो रही है। भावार्थ–आप सब पर दया करते हैं परन्तु मेरे ऊपर आपको दया नहीं आ रही है।।8।। एक बाज भूख से राजा मेघरथ के आगे मर गया यह अपकीर्ति आपकी नहीं होनी चहिये क्योंकि आपकी कीर्ति सर्वत्र छायी हुई है।।9।। आप सब प्राणियों का

हित करने में उद्यत हैं अतः इस कबूतर के अथवा किसी अन्य जीव के मांस से मुझ मांसभोगी की प्राण रक्षा करने के लिये समर्थ हैं।॥0।। इस प्रकार के वचन कह कर वह बाज चुप हो रहा। वह राजा की गोदमें छिपते हुए कबूतर को क्रोध से देख रहा था।॥1।।

राजा मेघरथ अपने अवधिज्ञान को उस ओर परावर्तित कर क्षणभर में उन पक्षियों के पूर्वभव सम्बन्धी वैर और उनकी तत्काल सम्बन्धी प्रवृत्ति को जान गये।॥2।। तदनन्तर राजा मेघरथ धर्मयुक्त वचनों से उस बाज पक्षी के मन को धीरे–धीरे परम शान्ति प्राप्त कराते हुए इस प्रकार कहने लगे–।॥3।।

जिनेन्द्र भगवान् ने जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है ऐसा कहा है और जीव भी बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा के भेद से तीन प्रकार का है।॥4।। कर्म सामान्य से एक है परन्तु उत्तर भेदों की अपेक्षा आठ प्रकार से विभक्त हो जाता है। योग कर्मों के हेतु हैं अर्थात् योगों के कारण कर्मों का आस्रव होता है और कषाय के वश उन कर्मों में स्थिति पड़ती है।॥5।। कर्मों से प्रेरित हुआ जीव चारों गतियों में सुख दुःख को भोगता हुआ सब ओर भटक रहा है॥16॥ संसार से पार होने का उपाय जिन शासन के सिवाय दूसरा नहीं है। वह जिनशासन भव्य जीव को ही प्राप्त होता है अभव्य जीव को नहीं॥17॥ उसमें श्रावक का निर्मल धर्म चार प्रकार का कहा गया है–1 शीलव्रत 2 उपवास 3 दान और 4 पूजा॥18॥ इस चार प्रकार के श्रावक धर्मों में दानशील मनुष्य दान के चार भेद कहते हैं–आहार, अभय, शास्त्र और औषध।॥9।। उपर्युक्त दानों में आहार दान, क्रम से विधि, द्रव्य, प्रदाता, पात्र और फल के भेद से पाँच प्रकार का प्रवर्तता है।।20।। सामने जाकर पड़गाहना, उच्चासन, पाद प्रक्षालन, पूजा, नमस्कार, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, काय शुद्धि, और आहार शुद्धि यह नौ प्रकार की विधि है।।21।। योग्य और अयोग्य के भेद से द्रव्य दो प्रकार का है। कल्याणकारी वस्तु योग्य द्रव्य कहलाती है और सुवर्णादिक अयोग्य द्रव्य।।22।। श्रद्धा, शक्ति, क्षमा,

भक्ति, ज्ञान, सत्त्व और अलुब्धता, दाता के ये सात गुण दान शील मनुष्यों के कहे हैं।।23।। पात्र तीन प्रकार का है। इनमें उत्तम पात्र मुनि माने गये हैं विरता– विरत गुणस्थान में स्थित देशव्रती मध्यम पात्र कहे गये हैं और असंयम सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र कहा गया है। मिथ्यादृष्टि अपात्र होता है। इस प्रकार पात्रविधि कही गयी।।24–25।। स्वर्ग और भोगभूमि का सुख पात्रदान का उत्तम फल है। कुपात्र दान का फल कुभोग भूमि का मनुष्य होना है।।26।। चूंकि जीव समूह दो प्रकार का है अतः अभयदान भी दो प्रकार का है। त्रस तथा स्थावर जीवों को पीड़ा नहीं पहुँचाना अभयदान है।।27।। चार अनुयोगों के भेद से उन दानों में शास्त्र दान चार प्रकार का है ऐसा भव्य जीवों के हितोपदेशक कहते हैं।।28।। रोग से पीड़ित चतुर्विधसंघ में औषध, शारीरिक सेवा तथा वचनों के द्वारा उनके रोगों का प्रतिकार करना औषध दान कहलाता है।।29।। औषध, अभय, शास्त्र और अन्नदान के फल से यह मनुष्य नीरोग, निर्भय हृदय, सर्वज्ञ और भोगवान् होता है।।30।। न तुम पात्र हो, न यह देय है। सन्मार्ग के ज्ञाता ज्ञानी पुरुष कष्ट के समय भी अकार्य नहीं करते हैं।।31।। इस जीव पर आप अपना पुराना वैर छोड़ो। आप दोनों के वैर का सम्बन्ध मैं कहता हूँ सावधान होओ।।32।।

इस कान्ति संयुक्त जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में पद्मिनीखेट नामका एक बड़ा नगर है।।33।। उसमें वैश्य कुलोत्पन्न तथा मर्यादा से समुद्र की उपमा प्राप्त करने वाला सागरसेन नामका एक वैश्य शिरोमणि था।।34।। उसकी अमितमति नामकी स्त्री थी। जो विशुद्ध बुद्धि से सहित थी, सुन्दर शरीर वाली थी, धर्म में सदा तत्पर रहती थी और पति को अत्यन्त प्रिय थी।।35।। उन दोनों के कालक्रम से दो पुत्र हुए बड़े पुत्र का नाम दत्त और छोटे पुत्र का नाम नन्दिषेण था।।36।। उन दोनों पुत्रों ने कोई कला तथा गुण नहीं सीखे तथा अनर्थकारी कार्यों में संलग्न हो गये। इसलिये पिता का देहान्त होने पर उन्होंने कुछ ही समय में धन नष्ट कर दिया।।37।। निर्धनता के कारण इनका मन व्याकुल हो

गया। अन्त में मान से सुशोभित वे दोनों धन कमाने के लिये उद्यत हो नागपुर गये।।38।। उस पद्मिनीखेट नगर में उनके पिता का एक मित्र रहता था उससे पूँजी लेकर वे व्यापार के लिए वैश्यों के साथ स्थल यात्रा से गये।।39।। उनकी यात्रा सफल हुई इसलिए इच्छानुसार धन कमाकर लौटे। लौटते समय वे शङ्ख नदी के तट पर आये।।40।। बड़ा भाई दत्त श्रम से दुखी हो गया था इसलिए पानी पीकर ह्रद के समीप उत्पन्न जम्बू वृक्ष के शीतल छाया से युक्त तल में सो गया।।41।। लोभवश छोटे भाई ने विचार किया कि मैं इसे मार डालूँ। ठीक ही है क्योंकि कषायों के द्वारा किनका मन कलुषित नहीं किया जाता?।।42 उसकी तलवार पड़ने से बड़ा भाई सोते से उठ खड़ा हुआ और छोटे भाई को मारने लगा। इस प्रकार क्रोध से भरे हुए दोनों भाई परस्पर एक दूसरे को मारने लगे।।43।। परस्पर तलवार के प्रहार से दोनों घायल होकर ह्रद के बीच में गिर कर मर गये तथा मगरमच्छों ने उनकी आंतों के समूह खा लिये।।44।। उसी नगर के सुन्दर उपवन में दत्त तो कबूतर हुआ और तू नन्दिषेण क्रूर ह्रदय बाज हुआ है।।45।। इस प्रकार राजा के द्वारा कहे हुये अपने पूर्वभव को सुनकर दोनों पक्षियों को जाति स्मरण हो गया जिससे उन्होंने स्वयं ही बैर छोड़ दिया।।46।। जिनके नेत्रों से आँसू निकल रहे थे तथा जो बार-बार गद्गद् स्वर से शब्द कर रहे थे ऐसे प्रीति युक्त दोनों पक्षी क्षण भर अपने पङ्खों से परस्पर आलिङ्कन करते रहे।।47।। भाई दृढ़रथ ने अत्यधिक कौतूक के कारण राजा मेघरथ से उन पक्षियों के मनुष्य के समान स्पष्ट बोलने का कारण पूछा इसलिए दयालु होकर वे इस प्रकार कहने लगे।।48।।

संजयन्तीपुर का स्वामी एक संजय नाम का विद्याधर था जो दमितारि के वध के समय क्रोध के अधीन हुए मेरे द्वारा मारा गया था।।49।। संसार में चिरकाल तक भ्रमण कर वह सोम नामक तापस का उसकी श्रीदत्त स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होने वाला पुत्र हुआ।।50।। उसने कैलाश पर्वत के समीप में स्थित निर्वृति नामक नदी के तीरपर

काश्यप ऋषि के आश्रम में प्रकाश में बैठकर घोर तपश्चरण किया।।51।। चिरकाल बाद वह तप के फल से ऐशान स्वर्ग को प्राप्तकर नाम और शरीर दोनों से सुरूप देव हुआ। भावार्थ—उस देव का नाम सुरूप था तथा शरीर से भी वह सुन्दर रूप वाला था।।52।। एक बार इन्द्र ने कहा कि प्राणियों को अभय दान देने तथा उन्हें शिक्षित करने के लिए समर्थ मेघरथ के सिवाय दूसरा राजा नहीं है।।53।। इस प्रकार इन्द्र के द्वारा कहे हुए मेरे यश को सुनकर उसे छिपाने की इच्छा से उस देव ने इन पक्षियों की यह वचन वृत्ति कर दी है।।54।। इस प्रकार अपना वृत्तान्त कह कर जब राजा मेघरथ चुप हो रहे तब वह देव अपनी कान्ति से सभा को दैदीप्यमान करता हुआ नम्र भाव से प्रकट हुआ।।55।। राजा मेघरथ यद्यपि अपारिजात थे—पारिजात—कल्प वृक्ष के पुष्पों से रहित थे (पक्ष में शत्रु समूह से रहित थे) तथापि उस देव ने उनके चरणों को पारिजाताञ्चित—कल्पवृक्ष से पूजित किया था। पूजा करने के बाद उसने क्रम से इस प्रकार के वचन कहे।।56।।

जिस प्रकार विनिद् र्धूतरजः स्थितेः—धूली की स्थिति को दूर करने वाले नूतन मेघ की वृष्टि से सर्वजगत् का संताप दूर हो जाता है उसी प्रकार विनिद्र्धूतस्थितेः—पाप की स्थिति को दूर करने वाले आपकी कृपा से सर्व जगत् का संताप दूर किया गया है।।57।। ऐसे दूसरे कौन हैं, जो तिर्यंचों को भी शान्ति धारण कराने के लिए समर्थ हों? आपने राजा होकर भी तपस्वियों का भार धारण किया है।।58।। जिस प्रकार अन्धकार को नष्ट करने वाले तथा जगत् को आनन्ददायी चन्द्रमा का उदय दूसरों को शान्ति प्रदान करने के लिए होता है उसी प्रकार अज्ञानान्धकार को नष्ट करने तथा जगत को आनन्द देने वाले आप जैसे सत्पुरुष का उदय दूसरों की शान्ति के लिये हुआ है।।59।। आप आत्मस्वरूप की भावना करने वाले हैं। अन्य मनुष्यों के गुण समूह को तिरस्कृत करने वाले आपके ऐसे गुणों से आपका आगे होने वाला परमैश्वर्य—परमेश्वरपना प्रकट होता है।।60।। इस प्रकार राजा की

स्तुति कर वह देव मुकुट की किरणों से मार्गस्थित मेघों को इन्द्रधनुष से युक्त करता हुआ अपने निवास स्थान पर चला गया।।61।। मार्ग का उपदेश देने वाले राजा मेघरथ के द्वारा जीवन में उत्कृष्टक्रान्ति– अत्यधिक सुधार कर दोनों पक्षी अत्यन्त श्रेष्ठ भवनों के विस्तार से सहित भवनवासी देव हुए।।62।।

तदनन्तर उपवास की समाप्ति होने पर जिनेन्द्र भगवान् की पूजा कर यज्ञान्तस्नान करने वाले राजा मेघरथ हर्षित हो अपने भवन गये।।63।। एक समय निर्मल लक्ष्मी के स्थान स्वरूप राजा मेघरथ के अन्तःपुर में प्रशान्तचारित्र से सहित दमधर नामक मुनिराज ने प्रवेश किया।।64।। अचिन्तित आये हुए उन मुनिराज को राजा ने विधिपूर्वक आहार कराया और वे मुनिराज भी आगम के अनुसार आहार कर उनके घर से चले गये।।65।। तदनन्तर वर्षा कालीन मेघ के समान गम्भीर शब्द से युक्त तथा उनके दान की घोषणा करने वाला दिव्यदुन्दुभियों का शब्द दिशाओं में होने लगा।।66।। उत्तम राजा के समान रज–धूली (पक्ष में पाप) के संचार को रोककर पृथिवी तल को संतुष्ट करने वाली सुगन्धित वायु धीरे–धीरे बहने लगी।।67।। जिसने भ्रमरों को हर्षित किया था तथा सुगन्धि से दिशाओं को व्याप्त किया था ऐसी देवों के द्वारा आकाश से छोड़ी हुई पुष्पवृष्टि होने लगी।।68।। कान्ति से दिशाओं को पीला करने वाली, आकाश से पड़ती हुई रत्नों की धारा से पृथिवी ऐसी सुशोभित हो गई मानों बिजलियों के समूह से ही सुशोभित हुई हो।।69।। 'अहोदानम्' 'अहोदानम्' यह देवों के वचन उनकी तालियों के शब्दों से मिश्रित होकर नगरी के चारों ओर फैल रहे थे।।70।। इस प्रकार जिसे पञ्चाश्चर्य प्राप्त हुए थे ऐसा वह सज्जनों का स्वामी राजा मेघरथ, यद्यपि अनेकों बार देखा गया था तो भी देवों के साथ नगरवासियों के द्वारा आश्चर्य से अदृष्ट के समान देखा गया।।71।।

तदनन्तर किसी अन्य समय देव समूह को नम्रीभूत करने वाले ईशानेन्द्र ने पृथिवी को लक्ष्य कर हस्तकमलों को मस्तक पर लगा

नमस्कार किया।।72।। आश्चर्य से युक्त इन्द्राणी ने उस इन्द्र से पूछा कि हे प्रभो! आप स्वयं देवों के वन्दनीय हैं फिर आपने किसे नमस्कार किया है?।।73।। प्रसन्न चित्त इन्द्र ने कहा कि रात्रि के समय प्रतिमा योग धारण करने वाले धैर्य की राशि स्वरूप अनुपम राजा मेघरथ को मैंने नमस्कार किया है। इस प्रकार इन्द्र का कथन सुन कर राजा मेघरथ के धैर्य को भग्न करने के लिये अरजा और विरजा नाम की दो देवाङ्गनाएं पृथिवी पर उतरीं।।74–75।। तदनन्तर पवित्र रङ्गावली से सुशोभित चैत्यालय के आगे जो खड़े हुए थे तथा अत्यन्त ऊँचे दूसरे मानस्तम्भ के समान जान पड़ते थे। वाह्य कक्षा के विभाग में स्थित, शान्तचित्त, शस्त्ररहित और मौन से स्थित अपने कुछ भृत्य जिनकी उपासना कर रहे थे, जो अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन कर रहे थे, नासिका के अग्रभाग पर जिनकी दृष्टि लग रही थी, जो शान्तवृत्ति सजीव प्रतिमा की आकृति को धारण कर रहे थे, अङ्गों में सब ओर से प्रतिबिम्बित तारागणों से जो ऐसे जान पड़ते थे मानों अपने आप से निकलने वाले यश के समूहों से ही युक्त हों, ध्यान से शिथिल शरीर से गिरते हुए मणिमय आभूषणों से जो ऐसे जान पड़ते थे मानों भीतर स्थित राग भाव ही उन्हें सब ओर से छोड़ रहे हों, जो लहरों से रहित समुद्र के समान थे, वन से रहित पर्वत के समान जान पड़ते थे और जिन्होंने सब वस्त्रादि को छोड़ दिया था ऐसे राजा मेघरथ को उन देवाङ्गनाओं ने देखा।।76–81।। श्रृङ्गार रस से सुशोभित वचन और चेष्टा के द्वारा भी वे देवाङ्गनाएं उनके मन में क्षोभ उत्पन्न नहीं कर सकी।।82।। तदनन्तर सौभाग्य के भङ्ग से उत्पन्न लज्जा के द्वारा जिनके मुख नीचे की ओर झुके हुए थे ऐसी वे देवाङ्गनाएं नमस्कार कर पुनः अपने स्थान पर चली गयीं।।83।। इस प्रकार परमार्थ से रात्रि योग पूरा कर जिनकी आत्मा शुद्ध हुई थी तथा प्रातः काल भी जिन्हें लोगों ने देखा था ऐसे राजाधिराज मेघरथ चिरकाल तक सुशोभित हुए।।84।।

अथानन्तर कोई दो स्त्रियाँ जो रानी के समान सुशोभित थीं और प्रतिहारी ने जिन्हें भीतर प्रवेश कराया था, मर्यादा का पालन करने वाली रानी प्रियमित्रा के सन्मुख आयीं।।85।। जब वे स्त्रियाँ भेंट देकर अपने योग्य आसन पर अच्छी तरह बैठ गयीं तब प्रियमित्रा ने उनसे कहा कि आप किस लिए मेरे पास आई हैं?।।86।। इस प्रश्न के बाद उन स्त्रियों ने इस प्रकार का वचन कहा कि आप हम दोनों को कौतूहल वश अपना सौन्दर्य देखने के लिए आई हुई समझें।।87।। इस प्रकार अपना अभिप्राय कहकर जब वे स्त्रियाँ बैठ गयीं तब प्रियमित्रा ने उनसे कहा कि जब मैं स्नान कर आभूषण से विभूषित हो जाउँ तब आप दैखिए।।88।। यह कहकर तथा अपने आपको आभूषणों में विभूषित कर उसने उन स्त्रियों के लिए दिखाया। देखकर उन स्त्रियों ने कहा कि तुम्हारा रूप पहले देखे हुए रूप से बहुत क्षय को प्राप्त हो गया है—कम हो गया है ठीक ही है क्योंकि मनुष्यों की कान्ति नश्वर तथा निःसार होती ही है।।89–90।। इतने पर भी यद्यपि तुम्हारा लावण्य ढलती हुई जवानी से युक्त है तो भी वह स्थायी यौवन से सुशोभित अप्सराओं के भी रूप को जीतने के लिए समर्थ है।।91।। इन्द्र ने सुरूपवती स्त्रियों की कथा चलने पर आपकी जैसी प्रशंसा की थी आप वैसी ही हैं, यह कहकर दोनों देवाङ्गनायें तिरोहित हो गयीं।।92।।

तदनन्तर रूप के ह्रास की बात सुन कर जिसे अत्यधिक वैराग्य उत्पन्न हो गया था ऐसी रानी ने लज्जायुक्त हो राजा के लिये उन देवियों का वृत्तान्त कहा।।93।। पश्चात् क्षणभर ध्यान कर राजा प्रिया को शरीर की निःसारता बतलाते हुए सुन्दरता पूर्वक इस प्रकार कहने लगे।।94।।

मनुष्यों के इस शरीर का हेतु रज और वीर्य है इसलिये रज और वीर्य से तन्मय शरीर की सुन्दरता क्या है ? वह तो मात्र काल्पनिक है।।95।। कष्ट इस बात का है कि ऐसे शरीर को धारण करता हुआ भी यह कर्ममलिन जीव अहंकार से युक्त होता है शुभभावों से युक्त कभी नहीं होता।।96।। फिर भी यह मनुष्य का भव धर्म का हेतु होने से

प्राणियों के लिये करोड़ों भवों से दुर्लभ है, ऐसा धर्मात्मा जीव कहते हैं।97।। जिस प्रकार अनेक रङ्गों से युक्त इन्द्र धनुष, घनलग्न–मेघ में संलग्न होने पर भी क्षण भर में नष्ट हो जाता है।98।। मनुष्यों की संपदाएं क्या बिजली की कौंद के समान चंचल नहीं हैं ? और आयु वायु से कम्पित तृण की बूंद के समान विनश्वर नहीं है ?।99।। जो स्वभाव से ग्लानि युक्त है, दुर्गन्धमय है, विनश्वर है, जिसके नव द्वार मल को झराते रहते हैं तथा जो कीड़ों से भरा हुआ है ऐसा यह शरीर क्या रमणीय है ? अर्थात् नहीं है।100।। तो भी उत्पन्न हुए मोह से परस्पर–एक दूसरे को चाहने वाले स्त्री पुरुषों के लिये यह शरीर क्या सुन्दर के समान नहीं जान पड़ता ?।।101।। जो प्रारम्भ में मनोहर हैं, पीछे वियोग में डालने वाले हैं तथा कठिनाई से प्राप्त होते हैं ऐसे भोगों की इच्छा करता हुआ यह मूर्ख मनुष्य केवल दुःखी होता है यह आश्चर्य की बात है।।102।। जो अन्य पदार्थों के सान्निध्य से सुख के लिये होता है वह उनके नष्ट हो जाने से दुःख के लिये क्यों न हो, इस स्पष्ट बात को राग से अन्धा मनुष्य नहीं जानता है।।103।। इन्द्रियों के विषय समूह का निरन्तर सेवन किया जाये तो भी उससे आत्मा की तृष्णा दूर नहीं होती है सो ठीक ही है क्योंकि तृष्णा से युक्त कौन मनुष्य सुखी होता है ? अर्थात् कोई नहीं।।104।। प्राणियों के लिये मोक्ष सुख का अभ्यास नहीं है इसलिये वह दुर्ज्ञेय–कठिनाई से जानने योग्य है वस्तुतः संसार में दुःख ही सुख समझा जाता है।।105।। जो मनुष्य अन्धकार में बैठा है वह भी यह कहता है कि पराधीन सभी कार्य दुःख हैं और स्वाधीन सभी कार्य परम सुख हैं।।106।। जिनका योग कारण है तथा जिनका अन्त अत्यन्त कटुक–दुखदायी है ऐसे आठ कर्मों से बाधित जीव को स्वतन्त्रता कैसे हो सकती है ?।।107।। क्षेत्रज्ञ–आत्मन् पुरूष कर्मनिर्मित पाँच इन्द्रियों तथा पाँच शरीरों को आत्मा से अत्यन्त भिन्न कहते हैं–।।108।। आत्मा रूपी पथिक कर्म रूपी संवल को लेकर चतुर्गति रूपी महाअटवी में सदा भ्रमण करता हुआ सुख दुःख भोगता है।।109।। नरक में निवास

करने वाला जीव कर्मोदय से सदा शारीरिक और मानसिक भयंकर दुःख भोगता है।॥10॥ आत्मा को नहीं जानने वाला जीव जब तिर्यञ्च गति में पहुँचता है तब वह नरक गति से कुछ कम दुःख भोगता है ऐसा आत्मज्ञ मनुष्य कहते हैं।॥11॥ जब यह मनुष्य होता है तब इन्द्रिय विषयों से पीड़ित होता हुआ कुछ सुख कणों से मधुलिप्त विष के समान दुःख भोगता है।॥12॥ आठ गुणों के ऐश्वर्य से युक्त देव भी मानसिक व्यथा से रहित नहीं है अतः चारों गतियाँ दुःख से संतप्त मानी गयी हैं।॥13॥ यही कारण है कि ज्ञानी भव्य जीव असार संसार से भयभीत होता हुआ रत्नत्रय से विभूषित हो मुक्ति के लिये उद्यम करता है।॥14॥

संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक भव्य जीव काललब्धि आदि से युक्त होता हुआ सम्यक्त्व को प्राप्त होता है।॥15॥ तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यक्त्व कहा गया है॥ उसके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इस प्रकार तीन भेद हैं।॥16॥ वह तीन भेद भी अनन्तानुबन्धी क्रोध माना माया लोभ तथा मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन सात प्रकृतियों के उपशम क्षय और क्षयोपशम से होते हैं ऐसा सुबुद्धिमान् जीव कहते हैं।॥17॥ उच्च सम्यक्त्व के संराग और वीतराग के भेद से दो भेद होते हैं। उनमें एक तो प्रशम संवेग अनुकम्पा और आस्तिक्य आदि लक्षणों से युक्त है और दूसरा सब ओर से आत्मा से आत्मा की विशुद्धि मात्र है।॥18॥ सम्यग्दृष्टि जीव, जीवाजीवादि पदार्थों को सुनने की इच्छा रखता है इसलिये साधुओं के संपर्क में आता है और उनसे श्रुतज्ञान को प्राप्त होता है।॥19॥ आगम के अभिप्राय को जानने वाला मनुष्य विरति–पांच पापों से निवृत्ति को प्राप्त होता है, विरति से आस्रव का अभाव होता है और उससे संवर प्रकट होता है।॥20॥ संवर तप का कारण है, तप से अत्यधिक निर्जरा होती है, निर्जरा से क्रिया का अभाव होता है और क्रिया के अभाव से अयोगी अवस्था प्राप्त होती है।॥21॥ योगनिरोध से संसार की संतति का सर्वथा उच्छेद हो जाता है और उससे मोक्ष प्राप्त होता है, इस प्रकार सम्यग्दर्शन मुक्ति का कारण

है।।22।। तप के समान आत्मा का दूसरा हित है नहीं है इसलिये भव्य जीवों को सब प्रकार से तप के लिए प्रयत्न करना चाहिए।।23।। इस प्रकार उत्कृष्टबुद्धि के धारक राजा मेघरथ सभा के बीच में रानी के लिये हित का उपदेश देकर स्वयं भी उस समय राज्यभोगों को छोड़ने के लिये इच्छुक हो गये।।24।।

तदनन्तर समीप में स्थित नन्दिवर्धन पुत्र को देखकर इस प्रकार कहने लगे कि प्रजा की रक्षा करने का क्रम तुम्हारा है।।25।। ऐसा कहकर तथा उसके लिये छत्र चमर आदि राज चिह्न देकर मेघरथ ने भाई दृढ़रथ के साथ पिता घनरथ तीर्थंकर के समीप तप ग्रहण कर लिया।।26।। अन्य अनेक राजा भी उन्हें देखकर साधु हो गये। प्रियमित्रा रानी भी सुव्रता नाम की आर्यिका को नमस्कार कर सुव्रता–उत्तम व्रतों से युक्त हो गयी अर्थात् आर्यिका बन गयी।।27।। जिस प्रकार राजासन पर आरूढ़ राजा मेघरथ, अन्य राजाओं को अपने से हीन करते थे उसी प्रकार अत्यन्त उन्नत श्रुतस्कन्ध पर आरूढ़ होकर अन्य मुनियों को अपने से हीन करते थे।।28।। जिस प्रकार पहले–गृहस्थावस्था में उनका राज्य नियन्त्रित शत्रुओं से सुशोभित होता था उसी प्रकार नयों के ज्ञाता मुनिराज मेघरथ का तप भी नियन्त्रित शक्तिशाली इन्द्रियों से सुशोभित हो रहा था। भावार्थ–गृहस्थावस्था में वे जिस प्रकार शक्तिशाली शत्रुओं को बांधकर रखते थे उसी प्रकार तपस्वी अवस्था में शक्तिशाली इन्द्रियों को बांधकर स्वाधीन कर रखते थे।।29।। जिस प्रकार वे पहले सहायक साधनोपाय, देशविभाग, काल विभाग और आपत्प्रतिकार इन पांच अङ्गों से सहित मन्त्र–राज्य तन्त्र की रक्षा करते थे उसी प्रकार तपश्चरण करते हुए अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच अङ्गों से सहित मुनिसम्मत संयम की रक्षा करते थे।।30।।

जिस प्रकार वे पहले अच्छी तरह अभ्यस्त किये हुए सन्धि विग्रह आदि छह गुणों से सुशोभित होते थे उसी प्रकार प्रमाद रहित तथा प्रशम गुण में स्थित रहते हुए वे अच्छी तरह अभ्यस्त समता, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग इन छह नित्य कार्यों से सुशोभित

होते थे।।31।। जिस प्रकार वे पहले मंत्री आदि श्रेष्ठ राज्य के अङ्गों से लोक प्रिय थे उसी प्रकार वन में पहुँच कर तपस्या से कृश हुए अपने अङ्गों—शरीर के अवयवों से लोक प्रिय थे।।32।। जिस प्रकार राज्यावस्था में निरन्तर मन्त्री आदि सात प्रकृतियों को प्रसन्न करते हुए सुशोभित होते थे उसी प्रकार तप अवस्था में भी वे सात कर्म प्रकृतियों का क्षय करते हुए सुशोभित हो रहे थे।।33।। जिस प्रकार वे पहले परलोक—शत्रु समूह को जीतने की इच्छा से नीति निपुण मन्त्रियों के पास बैठते थे उसी प्रकार अब परलोक—नरकादि गतियों को जीतने की इच्छा से पूर्वविद् मुनियों के पास बैठते थे।।34।। जिस प्रकार वे धीर वीर पहले बारह प्रकार से स्थित राज्य को प्रवर्तित करते थे उसी प्रकार अब चिरकाल तक आगमानुसार बारह प्रकार के उत्कृष्ट तप को प्रवर्तित करते थे।।35।।

भावों के ज्ञाता तथा शङ्का कांक्षा आदि दोषों से रहित उन मुनिराज ने संपूर्ण निराकुल सुख की कारणभूत दर्शन—विशुद्धि भावना का चिन्तवन किया था।।36 अनेक शास्त्रों के ज्ञाता तथा गर्व से रहित वे मुनिराज गुरुओं, श्रेष्ठ आचार्यों तथा शास्त्रों की आगमानुसार विनय करते थे।।37।। व्रतों तथा शीलों के अतिचार बचा कर निर्दोष तपश्चरण करते हुए वे ज्ञानवान् मुनिराज अपने चित्त की सुधीरता को प्रकट करते थे।।38।। नय प्रमाण और निक्षेपों से तन्मय श्रुत का अभ्यास करने वाले उन मुनिराज के छहद्रव्यों से व्याप्त जगत् प्रत्यक्षता को प्राप्त हुआ था।।39।। वे निरन्तर यथा योग्य वैयावृत्य में तत्पर रहते थे तथा मानसिक व्यथा—ग्लानि आदि से रहित हो अत्यधिक रूप से साधु समाधि करते थे।।40।। वे शक्ति अनुसार कठिन तपश्चर्या भी करते थे सो ठीक ही है क्योंकि आत्महितकारी क्रियाओं में शिथिलता कौन करते हैं? अर्थात् कोई नहीं।।41।। जिनका छोड़ना कठिन है ऐसे आत्म संबन्धी रागादिक को छोड़ने वाले उन मुनिराज की कोई अनिर्वचनीय लोकोत्तर त्याग शक्ति विशिष्ट रूप से शोभायमान हो रही थी।।42।।

जिनकी आत्मा निराकुल थी ऐसे वे मुनिराज जिनागम, आचार्य तथा बहुश्रुतजनों की भक्ति से नम्रीभूत होने पर भी समुन्नत थे यह आश्चर्य की बात थी।।43।। धर्म तथा धर्म के फल में निरन्तर अनुराग करने वाले वे मुनिराज यद्यपि मन्दगति--ईर्यासमिति से धीरे--धीरे चलते थे (पक्ष में निर्भय मनुष्यके समान मन्थर गति से चलते थे) तोभी उनके संवेगधर्म और धर्म के फल में उत्साह (पक्ष में भय) प्रकट हुआ था, वह आश्चर्य की बात थी। भावार्थ भयवान् मनुष्य जल्दी भागता है परन्तु वे परलोक सम्बन्धी भय से युक्त होकर भी मन्द गति से चलते थे यह आश्चर्य था परिहार पक्ष में ईर्या समिति के कारण धीरे--धीरे चलते थे।।44।। वे छह आवश्यक कार्यों में यथा समय तत्पर रहते थे तो भी सुखी मनुष्यों में अद्वितीय, श्रेष्ठ तथा अग्रसर थे।।45।। वे प्रशस्त ज्ञान, निर्दोष तप जिनेन्द्र पूजा तथा साधु समूह से युक्त हो मार्ग प्रभावना करते थे।।46।। साधुओं से स्नेह रखने वाले वे मुनिराज ग्रन्थ के कठिन स्थलों में दूसरों का संशय दूर करते हुए निरन्तर प्रवचन में वात्सल्यभाव को विस्तृत करते थे।।47।। इस प्रकार तीर्थंकर प्रकृति के बन्ध में कारणभूत सोलह कारण भावनाओं का अभ्यास करते हुए उन्होंने पाप समूह का नाश करने वाला घोर तप किया था।।48।।

जो राजस--रजोगुणप्रधान भावों को खण्डित कर रहे थे तथा जिनका अभिप्राय पाप से रहित था ऐसे वे मुनिराज श्रुताधिक शास्त्र ज्ञान से अधिक होकर भी विश्रुत शास्त्रज्ञान से रहित थे यह आश्चर्य की बात थी। (परिहार पक्ष में विश्रुतविख्यात थे)।।49।। वे सब ओर से वैराग्य की परम सीमा को प्राप्त थे तो भी उत्कृष्ट सिंह जैसी क्रीड़ा की स्थिति में उद्यत रहते थे सिंह के समान शूरता दिखलाते थे (पक्ष में उत्कृष्ट सिंह निष्क्रीडित व्रत का पालन करते थे)।।50।। इस प्रकार तपस्या करते, कषाय रूपी शत्रुओं को नष्ट करते तथा जीव मात्र के हित की इच्छा करते हुए उन नयों के ज्ञाता मुनिराज ने बहुतकाल व्यतीत किया।।51।। शिक्षा ग्रहण का काल आगमानुसार व्यतीत कर

उन्होंने चिरकाल तक गणपोषण का काल भी धारण किया अर्थात् आचार्य पद पर आसीन होकर मुनिसंघ का पालन किया।।52।। तदनन्तर आत्मा को सुसंस्कृत करने का काल व्यतीत कर अर्थात् आत्मा में ज्ञान और वैराग्य के संस्कार भर कर उन्होंने किसी क्लेशके बिना ही चिरकाल तक सल्लेखना काल को धारण किया।।53।।

अङ्गों के साथ तीव्र बन्ध के कारणभूत चार कषायों को कृश कर वे मुनि–मार्ग में अत्यंत चतुर हो गये थे।।54।। वे श्रेष्ठ मुनिराज जहाँ निरन्तर तिलक वृक्षों का समूह फूला रहता था ऐसे तिलक पर्वत पर प्रायोपगमन सन्यास में बैठे।।55।। सल्लेखना काल में जो अपने शरीर की टहल स्वयं तो करते थे पर दूसरे से नहीं कराते थे तथा जिन्होंने अपनी मनोवृत्ति को अपने अधीन कर लिया था ऐसे वे धीर वीर मुनि चार प्रकार के धर्म्यध्यान का इस प्रकार ध्यान करने के लिये उद्यत हुए।।56।। आगम में जैसा वर्णन है वैसा द्रव्य और अर्थ का चिन्तन करते हुए उन्होंने परमार्थ से आज्ञाविचय नामक धर्म्यध्यान का चिन्तवन किया था।।57।। समीचीन मार्ग को न पाने वाले जीव संसार में भ्रमण करते हैं ऐसा उन्होंने अपायविचय धर्म्यध्यान में निरन्तर विचार किया था।।58।। कर्मों का उदय अत्यंत विचित्र शक्ति से युक्त होता है ऐसा विचार करते हुए वे निष्काम योगी, चिरकाल तक विपाकविचय नामक धर्म्यध्यान में स्थित हुए थे।।59।। नीचे, मध्य में तथा ऊपर लोक के आकार का विचार करते हुए उन्होंने क्रम से लोकसंस्थान विचय नामक धर्म्यध्यान का चिन्तवन किया था।।60।। इस प्रकार स्थिर चित्त के धारक वे मुनिराज कभी ध्येय का इस प्रकार ध्यान करते थे और कभी आत्मा की चञ्चलता से भावनाओं में उद्यत रहते थे। भावार्थ–चित्त की एकाग्रता में ध्यान करते थे और कभी चित्त की चञ्चलता होने पर अनित्यादि बारह भावनाओं का चिन्तवन करते थे।।61।। इस प्रकार उन धीर वीर मुनिराज ने एक मास तक प्रायोपगमन करके अतिशय क्षीण शरीर का त्याग किया सो ठीक ही है क्योंकि कृश किसे प्रिय होता है?।।62।। तदनन्तर सर्वार्थ सिद्धि को प्राप्त कर वहाँ समस्त प्रयोजनों की सिद्धि होने से वे चन्द्रमा के समान शरीर और कीर्ति से सुशोभित

होने लगे।॥63॥ वहाँ वे एक हाथ प्रमाण होकर भी उच्छ्रितावधि—अत्यधिक अवधि—सीमा से सहित (परिहार पक्ष में श्रेष्ठ अवधिज्ञान से युक्त थे) तथा महेन्द्र इस प्रसिद्ध संज्ञा को धारण करने वाले अहमिन्द्र हुए।॥64॥ वहाँ वे सिद्ध सुख से किंचित् ऊन, अप्रवीचार— मैथुन से रहित तथा तेंतीस सागर प्रमाण स्थिति से युक्त सुख का उपभोग करते थे।॥65॥

तदनन्तर दृढ़ संयम के धारक दृढ़रथ ने भी मुनियों के स्वामी बन कर चिरकाल तक ठीक तप किया।॥66॥ शुद्ध बुद्धि से युक्त तत्वज्ञ दृढ़रथ मुनिराज ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप नामक चार आराधनाओं की आराधना कर सल्लेखना की विधि से शरीर छोड़ा।॥67॥ पहले बड़े भाई मेघरथ ने आरुढ होकर जिस स्वर्ग रूपी गजराज को अलंकृत किया था, उन्हीं के गुणों का अभ्यास होने से ही मानों दृढ़रथ भी उसी स्वर्ग रूपी गजराज पर आरूढ़ हुए। भावार्थ—जिस सर्वार्थ सिद्धि विमान में मेघरथ उत्पन्न हुए थे उसी सर्वार्थ सिद्धि में विमान दृढ़रथ भी उत्पन्न हुए।॥68॥

जो अत्यन्त सुन्दर शोभा को धारण करते हुए भी निर्मल कान्ति से रहित थे (पक्ष में मोती के समान निर्मल कान्ति वाले थे), शुद्धात्मा—विरक्त हृदय होकर भी मेघरथ के जीव महेन्द्र के प्रति अवधिज्ञान को प्रकाशमान करने वाले थे तथा क्रीड़ा कमल की स्थिति को धारण करने वाले होकर भी भ्रमरों की क्रीड़ा से रहित थे ऐसे सुरेन्द्रचन्द्र इस नाम से प्रसिद्ध अहमिन्द्र हुए।॥69॥ वे दोनों अहमिन्द्र देदीप्यमान आभूषणों में संलग्न पद्मराग मणियों की किरणों के बहाने ऐसे जान पड़ते थे मानों मन से निकाले हुए राग के द्वारा ही बाहर सब ओर से सेवित हो रहे हों। साथ ही सम्यक्त्व की निर्मल संपदा से प्रसन्न थे तथा प्रशमगुण से अलंकृत मनोहर अवधिज्ञान से सहित थे।॥70॥

इस प्रकार महाकवि असग द्वारा विरचित शान्तिपुराण में मेघरथ के सर्वार्थसिद्धि गमन का वर्णन करने वाला बारहवां सर्ग समाप्त हुआ।॥12॥

त्रयोदशः सर्गः

अथानन्तर जम्बूद्वीप में सुशोभित भरत क्षेत्र में लक्ष्मी से उत्तरकुरु की शोभा को जीतने वाला कुरु देश है।।1।। जहाँ समुद्रों के समान मर्यादा से सहित, धीर वीर साधु पुरुषों के द्वारा स्वयंग्राह रस के समूह—मन चाही वस्तु की स्वयं लेने की भावना से सहित याचक कभी रोका नहीं जाता है। भावार्थ—जहाँ मन चाही वस्तु को स्वयं उठाने वाले याचक जन को कभी कोई रोकता नहीं है।।2।। जहाँ परस्पर के प्रेम से आकृष्ट हृदय वाले चकवा चकवी में ही वियोगिता—विरह था जल संगति—पानी की संगति देखी जाती है वहाँ के मनुष्यों में विरह तथा जड़—मूर्ख जनों की संगति नहीं देखी जाती है।।3।। जहाँ भीतर प्रतिबिम्बित तटवर्ती लाल अशोक वृक्षावलि के पल्लवों से युक्त सरोवर ऐसे हो जाते हैं मानों मूंगा के वन से ही सहित हों।।4।। जहाँ सुन्दर स्त्रियां कल्पलताओं के समान सुशोभित हैं क्योंकि जिस प्रकार स्त्रियां चित्रपत्रान्वित—नाना प्रकार के बेल बूटों से सहित होती हैं उसी प्रकार वहाँ की लताएं भी नाना प्रकार के पत्तों से सहित थीं, और जिस प्रकार स्त्रियाँ पुष्पैषूज्ज्वलया श्रिया—काम से उज्ज्वल शोभा से रमणीय होती हैं उसी प्रकार वहाँ की लताएं भी पुष्पेषु—फूलों पर उज्ज्वल शोभा से रमणीय थीं।।5।। जिन्होंने अपनी विभूति याचकों के उपभोग के लिये संकलित की है ऐसे वनवृक्षों के द्वारा भी जहाँ सद्पुरुषों का आचार धारण किया गया है भावार्थ—जहाँ के मनुष्यों की बात ही क्या, वन वृक्ष भी सत्पुरुषों के आचार का पालन करते हैं।।6।। जिस देश में धवलद्विज—राजहंस पक्षी जगत् की गर्मी को दूर करने वाले तथा अत्यन्त निर्मल जल से युक्त तालाबों की सेवा करते हैं और निष्कलंक ब्राह्मण जगत् के दुःख को दूर करने वाले तथा निर्दोष तलवार को धारण करने वाले उत्तम राजाओं की सेवा करते हैं।

भावार्थ–जहाँ तालाब उत्तम राजा के समान थे क्योंकि जिस प्रकार तालाब जगत्तापनुदः–जगत् की गर्मी को दूर करते तालाब विशुद्धतरवारि–अत्यंत विशुद्ध–निर्मल जल से युक्त होते हैं उसी प्रकार उत्तम राजा भी अत्यन्त विशुद्ध–दीन हीन जनों पर प्रहार न करने वाली तलवार से युक्त था। धवलद्विज–सफेदपक्षी अर्थात् हंस तालाबों की सेवा करते थे और धवलद्विज –निर्मल–निर्दोष ब्राह्मण उत्तम राजाओं की सेवा करते थे।।7।।

जहाँ की नदियाँ कमलों की पराग से पीत वर्ण अतएव सुवर्ण रस के समान दिखने वाले हिमशीतल–बर्फ के समान शीतल जल को धारण करती हैं।।8।। जहाँ विपल्लवतया हीनाः– विपत्ति के अंश मात्र से रहित (पक्ष में पल्लवों के अभाव से रहित अर्थात् हरे भरे पल्लवों से सहित) पथिकों के द्वारा उपयुक्त फल श्री से सहित अर्थात् जिनकी लक्ष्मी–संपत्ति का उपभोग मार्ग में चलने वाले पथिक भी करते थे ऐसे, (पक्ष में जिनके फल पथिक खाया करते थे) तथा मार्गस्थ–समीचीन आचार विचार में स्थित (पक्ष में मार्ग में स्थित) जन समूह और लताएं सुशोभित होती है।।9।। जो देश परस्पर समानता रखने वाले पर्वतों और सज्जनों से अलंकृत हैं क्योंकि जिस प्रकार पर्वत तुङ्ग–ऊँचे होते हैं उसी प्रकार सज्जन भी तुङ्ग–उदार हृदय थे, जिस प्रकार पर्वत धवलताधार–धव के वृक्ष तथा लताओं–बेलों के आधार होते हैं उसी प्रकार सज्जन भी धवलताधार–धवलता–उज्ज्वलता के आधार थे। जिस प्रकार पर्वत अन्तःसरल वृत्ति–भीतर देवदारु के वृक्षों के सद्भाव से सहित होते हैं उसी प्रकार सज्जन भी अन्तःसरलवृत्ति–भीतर से निष्कपट व्यवहार से युक्त थे और जिस प्रकार पर्वत महासत्त्व–सिंह–व्याघ्र आदि बड़े–बड़े जीवों से सहित होते हैं उसी प्रकार सज्जन भी महासत्त्व–महान् पराक्रम से युक्त थे ॥10॥

उस कुरुदेश में हस्तिनापुर नामका नगर है जो तीनों जगत् की कान्ति को जीतने वाली भरत क्षेत्र की लक्ष्मी का निवास भूत अद्वितीय कमल है।॥1॥ जिसमें निवास करने वाला मनुष्य विबुध–देव होकर भी अविमानग–विमान से गमन करने वाला नहीं था (परिहार पक्ष में विशिष्ट विद्वान होकर भी अत्यधिक अहंकार को प्राप्त करने वाला नहीं था) तथा निस्त्रिंशग्राहयुक्तः–क्रूर ग्राहजल जन्तुओं से युक्त होकर भी विजलस्थिति–राजित–जल के सद्भाव से सुशोभित नहीं था (पक्ष में तलवार को ग्रहण करने वाले लोगों से सहित होकर भी मूर्खो के सद्भाव में सुशोभित नहीं था)।॥2॥ जहाँ स्त्रियों का स्तन युगल यद्यपि सुवृत्त–अत्यन्त गोल था (पक्ष में सदाचार से युक्त था) तथा उन्नत–ऊँचा उठा हुआ (पक्ष में उत्कृष्ट था) तो भी उस पर हार – मणियों का हार (पक्ष में पराजय) पड़ा हुआ था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानों वह हार अपने आपकी गुणस्थिति–सूत्रों की स्थिति से सहित (पक्ष में गौणअप्रधान स्थिति से युक्त) कहने के लिये ही पड़ा हुआ था।॥3॥

जहाँ बाजार के मार्गों में चित्र विचित्र मणियों की किरणों से शरीर के कल्मासित–विविध रङ्गों से युक्त हो जाने के कारण लोग परस्पर–एक दूसरे को पहिचानते नहीं थे।॥4॥ जहाँ महामान स्तम्भसंभार विभ्रम–ऊँचे–ऊँचे खम्भों के भार की शोभा केवल चन्द्रमा के समान उज्ज्वल महलों में ही दिखायी देती थी वहाँ के मनुष्यों में अत्यधिक अहंकार में उत्पन्न हुए गत्यवरोध के समूह का विशिष्ट संचार नहीं देखा जाता था।॥5॥ जहाँ पर सहकार परिभ्रमः–सुगन्धित आमों पर परिभ्रमण करना कोयलों में ही था वहाँ के मनुष्यों में सहायक विषयक व्यापक संदेह नहीं था अर्थात् ये हमारी सहायता करेंगे या नहीं ऐसा संदेह नहीं था तथा अत्यन्त कमलायास–कमलपुष्पों की प्राप्ति के लिये अत्यधिक खेद भ्रमरों में ही प्रति दिन देखा जाता था वहाँ के मनुष्यों में लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये अत्यधिक खेद नहीं देखा जाता था।॥6॥

जिस नगर के भवन और योद्धा यद्यपि पर दारों–पर स्त्रियों–उत्कृष्ट स्त्रियों और शत्रु के विदारणों में संगत–संलग्न थे तथापि बड़े आश्चर्य की बात थी कि वे अन्य दुर्लभ पताकाओं को धारण कर रहे थे। भावार्थ–भवन श्रेष्ठ स्त्रियों से सहित थे तथा उन पर पताकाएं फहरा रही थीं और योद्धा शत्रुओं के विदारण करने में संलग्न थे तथा युद्ध में विजय पताका प्राप्त करते थे।।17।। जहाँ का स्त्री समूह यद्यपि स्थूल स्तनयुगल और नितम्बों के भार से धीरे–धीरे चलता था तथापि काम ने उसे अस्त्रीकृत–स्त्रीत्व से रहित (पक्ष में अस्त्र स्वरूप) कैसे कर दिया।।18।। जहाँ हरने वाले समस्त मनुष्य संसारी होने पर भी मुक्तात्मा के समान स्वाधीन, सुख सहित तथा समान गुणों से युक्त थे।।19।। जहाँ काम के उन्माद को करने वाली वायु काम के पुष्पमय वाणों के समान कामीजनों के सन्मुख बहा करती थी। भावार्थ–पुष्पों से सुवासित सुगन्धित वायु कामीजनों को ऐसी जान पड़ती थी मानों कामदेव अपने पुष्पमय वाण ही चला रहा हो।।20।।

उस हस्तिनापुर नगर में विशालबुद्धि का धारक वह राजा विश्वसेन रहता था जिसने समस्त पृथिवी का भार लीलापूर्वक–अनायास ही धारण कर लिया था।।21।। जो प्रताप के द्वारा लोक को आक्रान्त करने वाला होकर भी चन्द्रमा के समान सुखलोक–सुखसे दर्शन करने योग्य था। दूसरों के कार्यों में सारद–महत्त्वपूर्ण सहयोग देने वाला था तथा विशारद–अत्यन्त बुद्धिमान था ऐसा वह राजा अतिशय देदीप्यमान था।।22।। जो राजा उत्तम कवि के समान था क्योंकि जिस प्रकार उत्तम कवि साधुवृत्ताहितरति उत्तम छन्दों में प्रीति को धारण करने वाला होता है उसी प्रकार वह राजा भी सत्पुरुषों के आचार में प्रीति को धारण करने वाला था। जिस प्रकार उत्तम कवि सदर्थघटनोद्यत–उत्तम अर्थ के प्रतिपादन में उद्यत रहता है उसी प्रकार वह राजा भी सदर्थघटनोद्यत–सज्जनों का प्रयोजन सिद्ध करने में उद्यत रहता था

और जिस प्रकार उत्तम कवि के हृदय में समस्त लोक जगत् स्थित रहता है उसी प्रकार उस राजा के हृदय में भी समस्त लोक–जनसमूह स्थित रहता था अर्थात् वह समस्त लोगों के हित का ध्यान रखता था।।23।। जो राजा सुमेरु पर्वत के समान सुशोभित हो रहा था क्योंकि जिस प्रकार सुमेरु पर्वत सामराग–कल्पवृक्षों से युक्त महिमा से सहित है उसी प्रकार वह राजा सामराग–साम उपाय सम्बन्धी राग से युक्त महिमा से सहित था तथा जिसप्रकार सुमेरु पर्वत प्रत्यन्त पर्वतों के समीप चलने वाली समस्त देवसेनाओं से सुशोभित होता है उसी प्रकार वह राजा भी चरणों के समीप चलने वाले समस्त उत्तम राजाओं से सुशोभित था।।24।। वह राजा यद्यपि अंकुश प्रयोग से अलंकृत तथा अतिशय प्रशस्त उत्कृष्ट पराक्रम को धारण कर रहा था तो भी उसकी शत्रुसमूह अत्यधिक अरिविभु–चक्र रत्न से समर्थ–शक्ति शाली था (पक्ष में अरि–निर्धन और विभु–पृथिवी से रहित था।।25।। जिसने प्रसिद्ध साहस से युक्त तथा अत्यधिक दान–त्याग (पक्ष में मद) से सहित भद्रप्रकृति वाले सेवकों और हाथियों को भूतियाँ–संपदाएं (पक्ष में चित्रकर्म) प्राप्त करायें थे। भावार्थ–जिनका पराक्रम प्रसिद्ध था तथा जिन्होंने बहुत भारी त्याग किया था ऐसे उत्तम सेवकों के लिए वह पुरस्कार स्वरूप संपदाएं देता था तथा जिनका अवदान–तोड़ फोड़ का कार्य प्रसिद्ध था तथा जिनके गण्डस्थल से बहुत भारी दान–मद चू रहा था ऐसे हाथियों के गण्डस्थलों तथा सूंडोंपर उसने रङ्ग बिरङ्गे चित्र बनवा कर उन्हें अलंकृत किया था।।26।। सुमध्य–सुन्दर मध्य भाग से युक्त मित्रों की स्त्रियाँ और सुमध्य–जंगलों में भटकने के कारण फूलों का ध्यान करने वाली शत्रुओं की स्त्रियाँ हारावरुद्ध कण्ठ के द्वारा (मित्र वधूजन पक्ष में हार में युक्त कण्ठ के द्वारा और अमित्रवधूजन पक्ष में 'हा' इस दुःख सूचक शब्द से रुंधे हुए कण्ठ के द्वारा) जिसकी मध्यस्थता को प्रकट करती थी।।27।। जिस राजा की कीर्तिरूपी वधू यद्यपि निरन्तर

सुरावास—मदिरालयों (पक्ष में स्वर्गों) और भुजङ्गवसती—अभद्र कामीजनों के निवास स्थानों (पक्ष में पाताल लोक) में भ्रमण करती थी तथापि वह लोक में निष्कलङ्क निर्दोष (पक्ष में उज्ज्वल) ही रहती थी।।28।। जिस प्रकार वृष्टि के प्रतिबन्ध से रहित अर्थात् निरन्तर वर्षा करने वाले मेघ के लिये पर्याप्त चालक नहीं मिलते हैं उसी प्रकार निरन्तर दान वर्षा करने वाले जिस राजा के लिए पर्याप्त याचक नहीं मिलते थे।।29।। जिसके प्रताप रूपी अग्नि से संतप्त अपने आप को शान्त करने के लिए इच्छुक हुए के समान शत्रुओं का समूह समुद्रप्रवाहों के बीच रहने लगे थे। भावार्थ—इस राजा के शत्रु भागकर समुद्रों के बीच में स्थित टापुओं पर रहने लगे थे जिससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों राजा की प्रतापाग्नि से संतप्त अपने आपको शान्त करने के लिये ही वहाँ रहने लगे हों।।30।।

उस राजा की श्रेष्ठ गुणों के सद्भाव से सहित एरा नाम की महारानी थी जो सद्वृत्ति के समान सदा उसके चित्त में समायी रहती थी उससे कभी अलग नहीं होती थी।।31।। मन्दगति से सहित, भद्रपरिणामों से युक्त तथा मृग के समान नेत्रों से सुशोभित जो रानी पृथक् पृथक् विशाल शोभा से संपन्न अवयवों से अत्यधिक सुशोभित हो रही थी।।32।। जिस रानी के द्वारा अन्तः करण की स्वच्छ वृत्ति से सदा सज्जनता धारण की गयी थी, पृथिवी पर यह एक बड़ा आश्चर्य था।।33।। जिस ऐरा की कान्ति से पराभूत होकर भी मानों लक्ष्मी पद्माकर—कमल समूह में निवास करने लगी थी और वह पद्माकर भी उसके भय से ही मानों उसके चरण पल्लवों की छाया—कान्ति को धारण कर रहा था।।34।। जो सत्यभाषण में तत्पर रहता था तथा सत्पुरुषों के प्रशमधन रूप था ऐसा राजा विश्वसेन उस पतिव्रता रानी के साथ धर्म और अर्थ का विरोध न करता हुआ इच्छानुसार काम सुख का उपभोग करता था।।35।।

इस प्रकार जिनका शासन अत्यन्त बलिष्ठ था और जिनके सैनिक समुद्र के तटवर्ती वनों में भ्रमण कर विश्राम करते थे ऐसे कुरुपति राजा

विश्वसेन जब कुरुदेश का शासन कर रहे थे तब सर्वहितकारी तथा उत्तम ऋद्धियों का धारक महेन्द्र (राजा मेघरथ का जीव) भव्यजीवों को संबोधने के लिए पृथिवी पर आने का इच्छुक हुआ।।36–37।। तदनन्तर छह माह पहले से ही उस नगर के चारों ओर आकाश से देदीप्यमान रत्नों की धारा निरन्तर पड़ना शुरू हो गयी।।38।। भव्य जीवों के मन के साथ आकाश स्वच्छ हो गया तथा चराचर पदार्थों से सहित जगत् सुन्दरता से युक्त हो गया।।39।। मेघ के बिना होने वाली वर्षा के सिञ्चन से पृथिवी की धूलि शान्त भाव को प्राप्त हो गयी सो ठीक ही है क्योंकि आर्द्र–सजल वस्तुओं (पक्ष में दयालुजनों) के संपर्क से किनकी रजः स्थिति–धूलि की स्थिति (पक्ष में पाप की स्थिति) दूर नहीं हो जाती?।।40।। पृथिवी को पवित्र करता हुआ, दिशाओं को सुगन्धित करता हुआ और दिव्य सुगन्ध के समूह को बिखेरता हुआ पवन बहने लगा।।41।। चन्द्रमा कृष्ण रात्रियों में यद्यपि क्षीण होता जाता था तो भी सब ओर सघन चाँदनी को बिखेरता हुआ पूर्ण के समान दिखाई देता था।।42।। कमल समूह के समान समस्त जगत् को सुखी करने वाली किरणों से सूर्य अत्यन्त सुखदायक स्पर्श से सहित हो गया था।।43।। वन्ध्य–न फलने वाले वृक्षों ने भी नये–नये फलों से सहित शोभा धारण की थी सो ठीक ही है क्योंकि जिनेन्द्र भगवान् का अवतरण होने पर जगत् में निष्फल कौन रहता है? अर्थात् कोई नहीं।।44।।

तदनन्तर उस समय प्रसन्नचित इन्द्र की आज्ञा से दिक्कुमारी देवियाँ उस कुटिल केशी ऐरा देवी के पास आयीं।।45।। जो अन्तर्हित रूप वाली उन देवियों से यथा स्थान अधिष्ठित थी तथा जिसने तीनों जगत् को तृण के समान तुच्छ कर दिया था ऐसी वह ऐरा देवी किसी अनिर्वचनीय शोभा को प्राप्त हुयी थी।।46।। जिसका पति अत्यन्त शान्त था अथवा जो गृह की स्वामिनी थी और जो उत्तम भवन के भीतर बिछी हुई कोमल शय्या पर अच्छी तरह शयन कर रही थी ऐसी उस ऐरा देवी ने रात्रि के अन्त भाग में ये स्वप्न देखे।।47।।

निरन्तर उन्नत रहने वाला हाथी, गम्भीर गर्जना से युक्त महावृषभ, पर्वतों को लांघता हुआ सिंह, कमल रूप आसन पर स्थित लक्ष्मी, मंडराते हुए भ्रमरों से युक्त दो मालाएं, सघन अन्धकार को नष्ट करने वाला चन्द्रमा, उगता हुआ सूर्य, तालाब में क्रीडा करता हुआ मछलियों का युगल, सुवर्णमय दो कलश, कमलों से परिपूर्ण सरोवर, लहराता हुआ समुद्र, सुवर्णमय महान् सिंहासन, सुन्दर देव विमान, श्रेष्ठ मणियों से युक्त धरणेन्द्र का भवन, विशाल किरणों से सहित रत्नराशि, और दैदीप्यमान अग्नि, इन स्वप्नों को देखकर वह जाग उठी। तदनन्तर मङ्गलमय कार्यों को सम्पन्न कर उसने सभा में बैठे हुए व्रती राजा विश्वसेन के लिए ये सब स्वप्न कहे।।48–52।।

तदनन्तर श्रवण करने के योग्य उन स्वप्नों को सुनकर भीतर हर्ष से भरे हुए राजा विश्वसेन रानी के लिये उन स्वप्नों का इस प्रकार फल कहने के लिए प्रवृत्त हुए।।53।। हाथी से तीन जगत् का रक्षक, वृषभ से धर्म स्थिति का कर्त्ता, सिंह से सिंह के समान निर्भीक, लक्ष्मी से जन्माभिषेक से सहित, माला युगल से यशस्वी, चन्द्रमा से पृथिवी पर अन्धकार को नष्ट करने वाला, सूर्य से भव्य रूपी कमलों को विकसित करने वाला, मत्स्य युगल से अत्यन्त सुखी, कलशयुगल से लक्षणों का आधार, सरोवर से तृष्णा रहित, समुद्र से सर्वज्ञ, सिंहासन से मुक्ति को प्राप्त करने वाला, विमान से स्वर्ग से आने वाला, धरणेन्द्र के भवन से तीर्थ का कर्ता, रत्नराशि से गुण रूपी रत्नों का स्वामी, और दिखी हुयी अग्नि से कर्मों को नष्ट करने वाला हे देवी! तुम्हारे शीघ्र ही ऐसा पुत्र होगा। इस प्रकार उन स्वप्नों का फल कह कर राजाधिराज विश्वसेन बहुत प्रसन्न हुए।।54–58।। शान्त स्वप्नों के फल से प्राप्त हर्ष के भार से जो विह्वल हो रही थी ऐसी रानी ऐरा, राजा से विदा होकर धीरे-धीरे अपने भवन को चली गयी।।59।। भाद्रपद शुक्ल पक्ष की सप्तमी की रात्रि में जब चन्द्रमा भरणी नक्षत्र पर स्थित था, तब महेन्द्र (मेघरथ का जीव) सर्वार्थ

सिद्धि से पृथिवी पर अवतीर्ण हुआ।।60।। तीर्थंकर प्रकृति से प्रेरित वह महेन्द्र अहमिन्द्र भव्यजीवों के अनुग्रह के लिये ऐरावत हाथी की आकृति को धारण करता हुआ ऐरा देवी के मुख में प्रविष्ट हुआ। भावार्थ ऐरा देवी ने ऐसा स्वप्न देखा कि ऐरावत हाथी हमारे मुख में प्रवेश कर रहा है।।61।।

तद्नन्तर उसके अवतरण से जिनके अपने आसन कंपाय मान हो गये थे ऐसे चतुर्णिकाय के देव इन्द्रों सहित उस नगर में आ पहुँचे।।62।। उस समय आकाश विमानमय हो गया, पवन दिव्य सुगन्ध मय हो गया, संसार वादित्रों की ध्वनि से तन्मय हो गया और पृथिवी रत्नमयी हो गयी। देवाङ्गनाओं के सुन्दर मुखों से व्याप्त रात्रि ऐसी हो गयी मानों हजारों चन्द्रबिम्बों से रची गयी हो।।63–64।। देवों के द्वारा छोड़ी हुई पुष्पवृष्टिओं से व्याप्त तथा बाद्यों की विस्तृत प्रतिध्वनि से युक्त दिशाएं ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानों अट्टहास से सहित ही हों।।65।। चमकते हुए मणियों के आभूषणों से सहित, नृत्य करने वाली अप्सराओं का समूह आकाश में ऐसा देदीप्यमान हो रहा था मानों चंचल कल्पलताओं का वन ही हो।।66।। उस समय देवों के शरीर सम्बन्धी सौन्दर्य के प्रवाहों से डूबा हुआ वह समस्त नगर तेज से तन्मय जैसा हो गया था अर्थात् ऐसा जान पड़ता था मानों तेज से ही निर्मित हो।।67।। उस समय महान् ऋद्धियों के धारक इन्द्रों से व्याप्त आकाश अमूर्तिक होने पर भी पुण्य के कीर्तिस्तम्भपने को प्राप्त हुआ था अर्थात् ऐसा जान पड़ता था मानों पुण्य का कीर्तिस्तम्भ ही हो।।68।। दिव्य गन्ध को ग्रहण करने के लिये उड़ते हुए भ्रमरों से पृथिवी ऐसी हो गयी थी मानों सभी ओर से पापों के द्वारा छोड़ी जा रही हो।।69।। इस प्रकार के उस नगर को शीघ्र ही प्राप्त कर उन देवेन्द्रों ने पूजनीय ऐरा देवी की पूजा की और पूजाकर पुनः अपने अपने स्थानों को प्राप्त किया।।70।।

तदनन्तर देवों के साथ स्पर्धा होने के कारण ही मानों अत्यधिक रूप से अपनी विभूति को प्रकट करने वाले नागरिक जनों ने पुनरुक्त होने पर भी भाग्यवृद्धि की थी।।71।। आकाश से पड़ने वाली रत्नवृष्टि से स्पर्धा होने के कारण ही मानों उस समय पृथिवी से महारत्नों के खजाने निकले थे।।72।। महलों के ऊपर फहराने वाली, धर्म पल्लवों के समान सफेद ध्वजाओं से आच्छादित आकाश ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों गर्भस्थ बालक के यशः समूह से ही आच्छादित हो रहा हो।।73।। गर्भस्थित जिन बालक के प्रभाव से कुबेर प्रतिदिन ऐरा देवी के संमुख आकर प्रीति पूर्वक अपने हाथ में भेंट देता हुआ उसकी उपासना करता था।।74।। यतश्च वह बालक माता के गर्भ में स्थित होने पर भी तीन ज्ञानों से सहित तथा मल से अनुपद्रुत था इसलिये हिरण्यगर्भ हुआ था।।75।। माता को कभी पीड़ा न पहुँचाते हुए वह गर्भस्थ जिनेन्द्र अतिशय उज्ज्वल अङ्गों के द्वारा ही वृद्धिको प्राप्त नहीं हो रहे थे किन्तु ज्ञानादि गुणों के द्वारा भी वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे।।76।। गर्भस्थित तेज की राशि को धारण करती हुई वह जिनमाता उस आकाश के समान सुशोभित हो रही थी जिसके मेघदल के भीतर स्थित बाल सूर्य देदीप्यमान हो रहा था।।77।। क्योंकि वह संसार सम्बन्धी क्लेशों से रहित परमेश्वर को धारण कर रही थी, इसलिये उसके गर्भ को पीड़ा देने वाले दोहले आदि कैसे हो सकते थे?।।78।। भीतर स्थित जिनबालक के, बाहर देदीप्यमान तेज से वह ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों सफेद भोडल के खण्डों से निर्मित रत्न समूह की मञ्जूषा ही हो।।79।। लोक के अद्वितीय मङ्गलस्वरूप वैसे पुत्र को भीतर धारण करती हुई वह जिनमाता ही समस्त मङ्गलों में उत्तम मङ्गल हुई थी।।80।।

अथानन्तर ऐरा देवी के अपने माहात्म्य से वह त्रिलोकीनाथ ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन प्रातःकाल के समय भरणी नक्षत्र में स्वयं

उत्पन्न हुए।।81।। तीर्थंकर नाम की महिमा से देवियों के अतिशय पालन से, स्वकीय पुण्य के अतिशय से तथा श्रेष्ठ रूप के योग से जो समस्त लक्षणों से परिपूर्ण थे, जिन्होंने तेज से सूर्य को उल्लंघित कर दिया था, जो महान् उत्साह और बल से सहित थे, श्रीमान् थे, तीन ज्ञानों से सहित थे, जो उत्पन्न होते ही एक वर्ष के बालक के समान थे, देव समूह के नेत्र और मन को हरने वाले थे निष्पाप थे जिनका शरीर महाभिषेक के योग्य था, जो धीर थे, भयसे रहित थे, जो अपने तेज के द्वारा अपने आपके तीनों जगत् के स्वामी पने को प्रकट कर रहे थे, महानुभाव से सहित थे, दिव्य मनुष्यों के तुल्य थे तथा सुन्दर वचन बोलने वाले थे ऐसे वह जिनराज अत्यंत सुशोभित हो रहे थे।।82–86।।

तदनन्तर उन महाप्रतापी जिनेन्द्र भगवान् के उत्पन्न होने पर इन्द्रों के उच्च सिंहासन उसके चित्तों के साथ सहसा की कांपने लगे।।87।। सौधर्मेन्द्र के आह्वान से घण्टा की टंकार से प्रेरित हुए कल्पवासी देव इस प्रकार उस नगर को जाने के लिये तत्पर हुए।।88।। कोई एक देव प्रिया के कन्धे पर रक्खे हुए वाम बाहु को किसी तरह खींच कर उसके द्वारा बारबार रोके जाने पर भी चलने के लिए उद्यम करने लगा।।89।। कोई एक देव स्वामी से शङ्कित होता हुआ भी वीणा के समान मधुर भाषिणी सुन्दर स्त्री को चिरकाल बाद अपनी गोद से अलग कर सका था।।90।। अपनी स्त्री का नृत्य देखने से जिसका चित्त व्याक्षिप्त हो गया था ऐसा एक देव उसके संगीत को ही आगे कर घर से चला था।।91।। चलने के लिये जिसके समस्त सैनिक यद्यपि शीघ्र ही इकट्ठे हो गये थे तो भी वह देव प्रिय मित्र के न आने पर कुछ काल तक विलम्ब करता रहा।।92।। 'प्रसन्न होओ, उठो, चलेंगे, तुम व्यर्थ ही क्यों क्रोध कर रही हो?' इस प्रकार किसी देव ने अपनी कुपित प्रिया को चलने के लिये मना लिया था।।93।। कोई एक देव बांए हाथ से मित्र के कन्धे का आलम्बन कर दाहिने हाथ से कुछ झुक कर चलने के लिये स्त्री को उठा

रहा था।94।। कोई एक देव पीछे आती हुई प्रिया को बार-बार मुड़ कर देखता हुआ उसमें अपनी आसक्ति को प्रकट करता घर से निकला था।95।। कोई देव कण्ठ में संलग्न प्रिया को माला के समान धारण करता हुआ चलने लगा जब कि अन्य स्त्रियाँ ईर्ष्या के साथ उसे बार-बार देख रहीं थीं।96।। इस प्रकार चलने के लिये उत्कण्ठित नाना वाहनों वाले देवों से इन्द्र का सभा द्वार सब ओर से परिपूर्ण हो गया।97।।

तदनन्तर ऐशानेन्द्र आदि को सहसा आया देख सौधर्मेन्द्र चलने के लिये सिंहासन से उठा।98।। ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर जो लीला पूर्वक अंकुश घुमा रहा था तथा पीछे बैठी हुई इन्द्राणी भय से होने वाले आलिङ्गनों के द्वारा जिसे संतुष्ट कर रही थी ऐसे सौधर्मेन्द्र ने प्रस्थान किया।99।। तदनन्तर सब ओर लोक के अन्त तक वर्तमान देवों की सेनाओं के साथ तुरही के शब्दों से जगत् का मध्यभाग परिपूर्ण हो गया।100।। आगे चलने वाले देवों की ध्वजाओं से मार्ग सब ओर रुक गया था परन्तु शीघ्रता करने वाले कितने ही देव उनके भी आगे चल पड़े।101।। उस समय देव मुकुटों के अग्रभाग में स्थित पद्मराग मणियों की किरणों के समूह से समस्त आकाश सिन्दूर से व्याप्त हुए के समान लाल 2 हो गया था।102।। उन देवों के आभूषणों के प्रकाश तथा शरीर सम्बन्धी कान्ति के समूह से व्याप्त दिङ्मण्डल मेघ रहित होने पर बिजलियों से तन्मय के समान देदीप्यमान हो गया था।103।। कितने ही देव काश के फूलों के समान लगाये हुए छत्रों ऐसे शुभोभित हो रहे थे मानों उसके अपने पुण्य ही उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। ऐसे देवों को दूसरे देव बड़े आश्चर्य से देख रहे थे।104।। कोई एक देव विमान में बैठकर जा रहा था। वह अपनी प्रिया को बार-बार विभूषित करता था तथा कहीं इकट्ठी हुई भीड़ को निराकुलता पूर्वक देखता जाता था।105।। कोई एक देव बन्दी जनों के द्वारा प्रस्तुत जयघोष को

बंद कर मित्र के साथ हास्यपूर्वक कुछ वार्तालाप करता हुआ लीला से जा रहा था।॥06॥ कोई एक देव प्रतिक्षण बदल–बदल कर नये नये वेषों को धारण करता हुआ बड़े वेग से आ रहा था जिससे वह नट के समान जान पड़ता था।॥07॥

वाहन के वेग वश जिनकी चोटी की मालाएं कंधों पर लटकने लगी थीं ऐसी कितनी ही देवियाँ कामदेव की पताकाओं के समान सुशोभित हो रही थीं।॥08॥ किसी देव का पति मुड़ मुड़ कर दूसरी देवी की ओर देख रहा था इसलिये वह शरीर से उसके साथ जा रही थी अनुरक्त चित्त से नहीं।॥09॥ शरीर सम्बन्धी प्रभा समूह रूपी जल से जिन्होंने दिशाओं के मध्य भाग को सींचा था ऐसी कितनी ही देवियाँ लीलापूर्वक होने वाली मन्द मुसक्यानों के प्रकाश से चांदनी को सृजती हुई के समान जा रही थीं।॥10॥ सिंहनाद से जिन्होंने अपने सैनिकों को बुला रक्खा था ऐसे चन्द्रमा आदि देव, पूर्वोक्त प्रकार से आने वाले ज्योतिष लोक के निवासी देवों के साथ चलने लगे।॥11॥ उस समय सूर्य के साथ मिला हुआ चन्द्रमा ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों जिनेन्द्र जन्म के प्रभाव से वह आकाश को चन्द्रलोक मय कर रहा हो।॥12॥ उस समय मङ्गलग्रह अपनी कान्तियों के समूह से आकाश को अग्नि सहित अङ्गारों से तन्मय करता हुआ भी लोक की शान्ति के लिए हुआ था यह आश्चर्य की बात थी।॥13॥ आनन्द के भार से भरा हुआ बुधग्रह भी उस समय अपने वैदुष्य को विस्तृत करते हुए के समान उन सब के आगे चल रहा था।॥14॥ जिनकी महिमा वचन मार्ग से परे है ऐसे जिनेन्द्रदेव की स्तुति कैसे की जा सकती है? ऐसा ध्यान करता हुआ ही मानों बृहस्पति आशङ्का से धीरे–धीरे आ रहा था।॥15॥ सफेदी से अत्यन्त सफेद शुक्रग्रह भी उस समय आकाश से नीचे उतरा था और ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों हर्षित होते हुए धर्म का प्रकृष्ट हास ही हो।॥16॥ उस समय दूसरे देवों से स्पर्द्धा होने के कारण ही मानों

शनिग्रह जल्दी–जल्दी चल रहा था सो ठीक ही है क्योंकि जगत् के वैसे उत्सव में कोई पुरुष मन्द नहीं होता।।117।। उस समय राहु अलसी के फूल के समान अपनी किरणों के समूह से दिशाओं में तमाल वृक्ष के पल्लवों को विखेरता हुआ सा जा रहा था।।118।। हजारों निर्मल पताकाओं से सहित केतुग्रह, गङ्गा की उन्नत तरङ्गों के बीच चलता हुआ सा आ रहा था।।119।। इस प्रकार वे सब देव उस नगर को प्राप्त हुए जिसके चारों ओर समीपवर्ती प्रदेश में पटह की ध्वनि से प्रेरित व्यन्तरों की सेना से प्रवेश करना कठिन था।।120।। प्रशस्त भावना से सहित, चमर आदि भवनवासी देवों ने शङ्ख ध्वनि से आकर पहले ही जिसमें समस्त माङ्गलिक कार्य सम्पन्न कर लिये थे तथा जो तत्काल उपस्थित हुयी समस्त तीन लोक सम्बन्धी लक्ष्मी से सुशोभित हो रहा था ऐसा राजभवन का द्वार इन्द्र आदि देवों के द्वारा क्रम से प्राप्त किया गया।।121–122।।

इन्द्रादिक देवों ने दूर से ही वाहनों से उतर कर तथा राजा के लिए अपना परिचय देकर मेरुतुल्य राजभवन में प्रवेश किया।।123।। अन्तर्हित रूप वाले कितने ही देवों ने जिसे पहले ही सींचकर साफ कर लिया था, जो फैले हुए सुन्दर कण्ठ वाले किन्नर गवैयों से सुशोभित था, जो कहीं रत्नमय छज्जों के ऊपर स्थित देवों के द्वारा देखे जाने वाले हर्ष से प्रवृत्त नृत्यों से सुशोभित आंगन से सहित था अर्थात् आंगन में नृत्य हो रहा था और देव लोग उसे छज्जों पर बैठकर देख रहे थे, जो कहीं देहरी की समीपवर्ती वेदिकाओं पर लीलापूर्वक बैठे हुए आश्चर्य कारक विभूति वाले उन सामन्तों से युक्त था जो दूसरे देवों के समान जान पड़ते थे, जो कहीं मोतियों के समूह से युक्त होने के कारण ऐसा जान पड़ता था मानों चन्द्रमा की किरणों से ही व्याप्त हो और कहीं मूंगाओं के प्रकाश से ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों प्रातः काल के लाल लाल आतप खण्डों से ही युक्त हो, जो कहीं मृदंगों के शब्द से हर्षित मयूरों की केकावाणी से ऐसा जान पड़ता था मानों जिनेन्द्र

भगवान् के जन्माभिषेक के लिए मेघों को ही बुला रहा हो, जो कहीं रङ्गावली (रांगोली) में रखे हुए नाना रत्नों की देदीप्यमान प्रभावों के समूह से आकाश को सभी ओर इन्द्र धनुषों से युक्त करता हुआ सा जान पड़ता था, तथा जो समस्त भव्य प्रजा के पुण्यों से रंचे हुए के समान मनोहर था ऐसे जिन जन्मगृह को वहाँ देवों ने बड़े हर्ष से देखा।।124–130।। उस जन्मगृह को देखकर जिनके मुकुट भक्ति से झुक गये थे तथा मुख स्तोत्रों से शब्दायमान हो उठे थे ऐसे इन्द्रों ने पहले तीन प्रदक्षिणाएं देकर पश्चात् उस गृह में प्रवेश किया।।131।।

तदनन्तर इन्द्रों ने उत्पन्न हुए उन जिनराज को देखा जो महिमा के द्वारा लोकान्त को व्याप्त करने वाले होकर भी माता के आगे स्थित थे, जो प्रभामण्डल के मध्य में स्थित तथा सुखद कान्ति में युक्त अङ्गों के द्वारा स्वयं ही अपने आप को सब ओर से उपमा रहित—अनुपमा कह रहे थे, जो एक मूर्ति होकर भी तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव के भेद से तीन प्रकार से विभक्त थे, जिनका लोकोत्तर जन्म था, जो समस्त विद्याओं के कारण थे, अचिन्तनीय थे और जिनकी आत्मा जन्म से रहित थी, जो लोकातीत गुणों से सहित होने पर भी लोक के अद्वितीय नायक थे और बालक होने पर भी जिनके हृदय में समस्त लोक स्थित था।।132–135।।

तदनन्तर इन्द्र ने उनकी माता के आगे मायामय बालक रखकर उन जिनराज को उठा लिया सो ठीक ही है क्योंकि कार्य की अपेक्षा पवित्र कौन है? अर्थात् कार्य सिद्ध करने के लिए सभी माया का प्रयोग करते हैं।।136।। तदनन्तर गजराज—ऐरावत हाथी के सुन्दर स्कन्ध पर उन जिनराज को विराजमान कर इन्द्र आकाश मार्ग से मेरु की ओर चला।।137।। उस समय ऐशानेन्द्र ने जिनराज के ऊपर वह सफेद छत्र लगा रक्खा था। जिसे देव लोग उनके जन्माभिषेक के लिए आये हुए क्षीरसमुद्र की शङ्का से देख रहे थे।।138।। जिनराज के दोनों ओर

हाथियों पर आरूढ तथा लीलापूर्वक चमरों को चलाते हुए सानत्कुमार और माहेन्द्र किसी अनिर्वचनीय शोभा को प्राप्त हो रहे थे।॥39॥ जो लीलापूर्वक ऊपर उठाये हुए ठौना आदि मङ्गल द्रव्यों से सुशोभित हो रही थीं ऐसी इन्द्राणियाँ उन इन्द्रों के आगे हस्तिनियों पर सवार होकर जा रही थीं।॥40॥

तदनन्तर दिशा रूपी दीवालों में टकराने से उत्पन्न अपनी प्रतिध्वनि से बढ़ा हुआ देवदुन्दुभियों का शब्द गम्भीर रूप से वृद्धि को प्राप्त हो रहा था।॥41॥ कहीं आकाश किन्नरों की वीणा और बांसुरी के निरन्तर शब्दों तथा अप्सराओं के नृत्यों से आतोद्यमय—नृत्य गायन और वादन से तन्मय जैसा हो गया।॥42॥ आकाश में इधर–उधर देदीप्यमान होने से जो नाना रूप के धारक जान पड़ते थे ऐसे प्रथम (व्यन्तर के भेद–विशेष) देवों ने उछल कूद आदि नाना प्रकार के खेल प्रकट किये।॥43॥ घोड़ों के समान शीघ्र दौड़ते हुए भी गन्धर्व देवों ने जिनराज का वह यश उच्च स्वर से गाया था जिसमें क्रिया—करण—नृत्य मुद्राएं आदिनष्ट नहीं हुई थीं, यह आश्चर्य की बात थी।॥44॥

तदनन्तर उन इन्द्रों ने जम्बूद्वीप रूपी कमल की कणिका की आकृति को धारण करने वाला सुमेरु पर्वत मानों क्षणभर में प्राप्त कर लिया।॥45॥ उस सुमेरु पर्वत की ऐशान दिशा में स्थित चन्द्र कला के आकार वाली पाण्डुकम्बला नामक शिला को भी वे इन्द्र प्राप्त हुए।॥46॥ उस पाण्डुकम्बला शिला के सिंहासन पर पहले आगमानु उन जिनराज को विराजमान कर इन्द्र भक्ति पूर्वक इस प्रकार अभिषेक करने के लिए तत्पर हुए।॥47॥ रत्नमय कलशों को धारण करने वाले कितने ही इन्द्र उस सुमेरु पर्वत से लेकर क्षीर समुद्र तक पंक्तिरूप से खड़े हो गये।॥48॥ तदनन्तर मङ्गल पाठ पढ़ने वाले समस्त सामानिक देव उन जिनराज के चारों ओर भवन वासी देवों के साथ दूर खड़े हो गये।॥49॥ नान्दी आदि वादित्रों को बजाते हुए महा—तेजस्वी ज्योतिष्क और व्यन्तर

देवों के इन्द्र चारों ओर खड़े हुए।॥50॥ सौधर्मेन्द्र हजार हाथों से सुशोभित सुन्दर शरीर लेकर स्नपन करने वाला बन उन जिनराज के आगे खड़ा हो गया।॥51॥

तदनन्तर मधुर स्निग्ध और गम्भीर स्वर से क्रमपूर्वक त्रिलोकीनाथ के नामों से अङ्कित त्रिजगद्दण्डक का उच्चारण कर इन्द्र ने पहले ऋचाओं और हजारों मन्त्रों का भी अच्छी तरह उच्चारण किया। पश्चात् दूर्वा, जौ, अक्षत और कुशा के द्वारा विधिपूर्वक उनका वर्धापन—आरती आदि के द्वारा मङ्गलाचार किया।॥52–153॥ पश्चात् इन्द्र ने इन्द्राणी के हाथ से दिये, क्षीर समुद्र के जल से भरे हजार कलशों को अपने हजार भुजाओं से लेकर हजार कलशों के जल से जिन बालक का अभिषेक किया। भगवान् के इस अभिषेक को देव बड़े आश्चर्य के साथ देख रहे थे।॥54–155॥ तीन लोक के वैभव को आक्रान्त करने वाले उनके उस अभिषेक को देखकर देव परस्पर उनकी महिमा को इस प्रकार कह रहे थे।॥56॥ देखो यह बालक पीछे से किसी के पकड़े बिना ही अपने तेज से विशाल सिंहासन को आच्छादित कर बैठा हुआ है।॥57॥ कनेर के फूल के समान कान्ति वाली इनकी शरीर सम्बन्धी प्रभा से मिश्रित क्षीर जल भी अभिषेक से पीला–पीला होकर बह रहा है।॥58॥ बगल से दोनों ओर लीलापूर्वक चमरों को देखता हुआ यह बालक ऐसा सुशोभित हो रहा है। मानों मन ही मन इन्द्रों को कुछ आदेश दे रहा हो।॥59॥ यह मेरु पर्वत पृथिवीमय होकर भी इनमें अधिष्ठित होकर पवित्र हो गया है बड़े लोगों को भी यही सबसे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।॥60॥ यद्यपि इनके चरण पादपीठ का स्पर्श नहीं कर रहे हैं तो भी इनके नख रूपी मणियों की चांदनी देवों के मुकुटों पर दिखायी दे रही है यह आश्चर्य है।॥61॥ पृथिवी पर इसी का पृथुकत्व–बालकत्व पक्ष से विपुलत्व सार्थक दिखायी देता है जिसने माता के गर्भ में स्थित रहते हुए भी तीन जगत् को आक्रान्त कर लिया था।॥62॥ भव्यसमूह के नेता

स्वरूप इस जिन बालक के द्वारा ही नेत्रों को आनन्द देने वाला उत्तम शरीर धारण किया गया है निष्कलंक होने पर भी अन्य पुरुष से क्या प्रयोजन है?।।63।। अतिशय धैर्य का भण्डार स्वरूप यह बालक माता से वियुक्त होकर भी नहीं रो रहा है। ऐसा जान पड़ता है मानों यह लोगों के लिए अपने तीन ज्ञानों की सूचना ही दे रहा हो।।64।। तृष्णा से रहित होने के कारण यह आहार की इच्छा नहीं कर रहा है मात्र लोकोपकार की बुद्धि से अच्छी तरह पर्यङ्कासन बांध कर बैठा है।।65।। इत्यादि वचन कह कर कितने ही देवों ने कुड्मलाकार–अञ्जलि बद्ध हाथों से तथा विकसित मनों से जिनराज को नमस्कार किया।।66।।

तदनन्तर अभिषेक समाप्त होने पर अक्षत आदि से पूजा कर स्तुति में निपुण इन्द्र इस प्रकार स्तुति करने के लिये प्रवृत हुआ।।67।। जो लोकोत्तर प्रभाव से सहित है, स्तुति करने वालों के पाप शान्त करने वाले हैं, जिन्होंने संसार रूपी समुद्र को संपूर्णरूप से पार कर लिया है तथा जो भव्यजीवों के बन्धु हैं ऐसे आपके लिये नमस्कार हो।।68।। हे प्रभो! रोगादि की बाधा से रहित आपका शरीर तो वज्रमय प्रकाशित हो रहा है और चित्त करुणारस को झरा रहा है यह बड़े कौतुक की बात है।।69।। हे भगवान्! आप उचित के ज्ञाता होकर भी दूरवर्ती तथा निकटवर्ती सेवकों के लिये समानरूप से उत्कृष्ट विभूति को प्रदान करते हैं यह आश्चर्य की बात है।।70।। जिस प्रकार निर्मल चन्द्रमा का उदय जलरूप कुमुदों के विकास के लिये होता है उसी प्रकार आपका जन्म केवल जड़बुद्धि–अज्ञानी भव्य जीवों के प्रबोध–प्रकृष्ट ज्ञान के लिये हुआ है।।71।। प्रयोजन का उद्देश्य किये बिना मन्दबुद्धि भी कोई कार्य नहीं करता है परन्तु आप प्रबुद्ध–ज्ञान सम्पन्न होकर भी किसी अपेक्षा के बिना ही लोकों का उपकार करते हैं।।72।। समस्त संसार आपका सेवक है और धनुष लेकर 'क्या करूं' इस प्रकार आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है। हर्ष है कि यह अत्यधिक आश्चर्यकारी पुण्य आपका ही दिखाई

देता है।॥73।। आश्रित मनुष्यों का भवावास आपके द्वारा क्यों भग्न किया जाता है? अत्यन्त धीर वीर आपकी यह बालकों जैसी चपलता क्या ठीक है?।॥74।। जिस कारण संसार आपसे निरन्तर शान्ति को प्राप्त करेगा उस कारण आप नाम से शान्ति हैं। आपने संसार के कारणों को शान्त कर दिया है।॥75।। इस प्रकार हर्ष से स्तुति कर तथा विभूषित उन भगवान् को लेकर इन्द्र पहले के समान बड़ी विभूति से उस नगर की ओर चला।॥76।।

तदनन्तर देवों के कोलाहल से सहित भेरी का शब्द दूर से सुनकर नगरवासी जन अर्घ ले लेकर संभ्रमपूर्वक अगवानी के लिये निकल पड़े।॥77।। जिन पर सब ओर से स्त्रियाँ चढ़ी हुई थीं ऐसे महल स्थिर होने पर भी कांपने लगे थे इससे वे ऐसे जान पड़ते थे मानों मन में स्थित कौतुक के बहुत भारी भार से ही कांपने लगे थे।॥78।। देव, नगर की स्त्रियों की कान्ति से अपनी स्त्रियों को पराजित देख लज्जा से ही मानों आकाश से धीरे–धीरे पृथिवी पर उतर रहे थे।॥79।। उस समय सभी ओर से देवों के साथ एकता को प्राप्त हुए मनुष्यों का अन्तर पलकों के द्वारा ही किया गया था यह बड़े आश्चर्य की बात थी।॥80।। जिसमें अट्टालिकाओं और मार्गों की सजावट की गयी थी तथा जिसके आंगन धूली से रहित किये गये थे ऐसा वह नगर अपनी कान्ति से मानों देवों को भी लुभा रहा था।॥81।।

नगर में प्रवेश करते हुए भगवान् की उत्कृष्ट विभूति को देखती हुई महलों पर चढी नगर की स्त्रियाँ आश्चर्य से ऐसा कह रहीं थी।॥82।। देखो, यह नगर भीतर और बाहिर, सब ओर देवों से ऐसा व्याप्त हो गया कि सांस लेने को भी स्थान नहीं है, यह लोकोत्तर लक्ष्मी किसकी है?।॥83।। एक ही छत्र की कुन्द के समान शुक्ल कान्ति से व्याप्त हुआ आकाश दिन में भी चांदनी से सहित जैसा हो रहा है।॥84।। चामरों की कान्ति कलाप के बहाने दिशा रूपी स्त्रियाँ ऐसी जान पड़ती है मानों सब

ओर से पुण्य रूपी अङ्गराग से ही लिप्त हो रही हैं।॥85॥ चंदेवा के नीचे वर्तमान और दिव्य साज से सहित ये अप्सराएं पृथिवी पर गली गली में इच्छानुसार नृत्य कर रही हैं।॥86॥ देवियों के मुख की कान्ति रूपी चांदनी से जिसमें दिशाओं के अग्रभाग नहलाये गये हैं ऐसा यह दिन भी सौभाग्य से रचे हुए के समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा है।॥87॥ जिनबालक के देखने की इच्छा करने वाले ये कितने ही देव वेत्रलता—छड़ी को धारण कर दर्शकों को कुछ हटा—हटा कर लीला पूर्वक आ रहे हैं।॥88॥ ऐसी बहुत भारी भीड़ में भी यह बालक दुखी नहीं हो रहा है सो यहाँ यह किसका प्रभाव दिखायी दे रहा है?।॥89॥ तपाये हुए सुवर्ण के आकार वाली यह बालक के शरीर की प्रभा सब देवों के तेज को परिभूत—तिरस्कृत कर विद्यमान है।॥90॥ यह बालक हाथी के कन्धे पर बैठा हुआ भी ऐसा लगता है मानों लोक के ही ऊपर स्थित हो और इन्द्र के द्वारा आलम्बित होने पर भी ऐसा सुशोभित हो रहा है मानों समस्त संसार का आलम्बन हो।॥91॥ नगर की स्त्रियों द्वारा छोड़े जाने वाले अर्घ्य की लाज वृष्टि की संतति इस हाथी के गण्डस्थल पर उसकी सफेदी के कारण मालूम नहीं पड़ती है।॥92॥

राजमार्ग में प्रवेश करता हुआ यह बालक यद्यपि एक है तो भी अनेक देशों में स्थित मुनष्यों के द्वारा एक ही साथ ऐसा देखा जा रहा है मानों सबके सम्मुख स्थित हो।॥93॥ ये मांस भोजी दुष्ट जन्तु भी ऐसे बैठे हैं मानों दया से सहित ही हों। इस बालक के प्रभाव से समस्त लोक ही धर्ममय हो गया है।॥94॥ इस प्रकार स्त्रियों के द्वारा उच्च स्वर से जिनके गुणों का उदय प्रशंसित हो रहा था ऐसे उस बालक को आगे कर सौधर्मेन्द्र राजद्वार को प्राप्त हुआ।॥95॥ अनेक मनुष्यों की बहुत भारी भीड़ से जिसमें निकलना कठिन था ऐसे गोपुर को देव समूह बड़ी कठिनाई से पार कर सका था।॥96॥ राजाधिराज विश्वसेन ने भी माङ्गलिक द्रव्यों को हाथ में लेने वाले राजाओं के साथ क्रम से सात कक्षाएं पार कर प्रभु की अगवानी की।॥97॥ जिन्होंने समस्त देवों को

मना कर दिया था और राजा विश्वसेन जिनके आगे चल रहे थे ऐसे इन्द्र–भगवान् को भीतर ले गये।।98।। मायामय बालक के दूर करने पर जिनका चित्त कुछ व्याकुल हुआ था ऐसी ऐरा देवी के आगे उस जिन बालक को प्रतिष्ठित कर इन्द्रों ने इस प्रकार कहा।।99।। पुत्र के ले जाने से दुःख न हो इसलिये आपके आगे मायामय दूसरा पुत्र रख कर यह जिनराज मेरु पर्वत पर ले जाये गये थे।।200।। अभिषेक कर वहाँ से वापिस ले आये हैं, आपके पुत्र का नाम शांति है, तीर्थंकर के जन्म का यह क्रम है।।201।। तदनंतर यह कह कर इन्द्र जिनेन्द्र भगवान् के जन्मगृह से बाहर आये और चिरकाल तक हर्ष से श्रेष्ठ नृत्य कर अपने स्थान पर चले गये।।202।। यद्यपि देवों का समूह वेग से चला गया था तो भी स्वर्गलोक की शोभा ने उस नगर को नहीं छोड़ा, मानों वह उस नगर के द्वारा लुभा ली गयी थी।।203।।

अपने प्रताप से तीनों जगत् की रक्षा करने वाले शान्ति जिनेन्द्र को मन्त्र सम्बन्धी अक्षरों की पंक्ति से क्या प्रयोजन था? बाल सूर्य के समान कान्ति वाले उन शान्ति जिनेन्द्र को आगे रखे गये अन्य दीपों से क्या प्रयोजन था? तथा स्वयं प्रबुद्धात्मा से युक्त उन शान्ति जिनेन्द्र को बहुत बड़े पहरेदारों के समूह से क्या साध्य था? फिर भी पुरोहित ने 'यह शिशु है' यह समझकर उनकी व्यर्थ ही रक्षा की थी यह आश्चर्य है।।204।। जिसमें अभी दन्त रूपी केशर प्रकट नहीं हुई थी। ऐसे जिनके मुख रूपी कमल को प्राप्त कर सरस्वती सुन्दर हास्य के बहाने चिरकाल तक निश्छल भाव से सुशोभित होती रही और लक्ष्मी ने जिनके वक्षः स्थल पर निरन्तर संपूर्ण रूप से क्रीड़ा की उन शान्ति जिनेन्द्र की बाल्यावस्था में भी बहुत भारी अनिर्वचनीय प्रभुत्व रूप संपदा थी।।205।।

इस प्रकार असग महा कवि कृत शान्ति पुराण मैं जन्माभिषेक का वर्णन करने वाला तेरहवां सर्ग समाप्त हुआ।।13।।

चतुर्दशः सर्गः

अथानन्तर अपने प्रभाव से और देवों के प्रयत्न से शान्ति जिनेन्द्र भव्यजीवों के मनोरथों के साथ बढ़ने लगे।।1।। जो शरीर से स्वेद रहित थे, निर्मल थे, हरिचन्दन के समान सुगन्धित थे, दूध के समान सफेद रुधिर से युक्त थे, समस्त शुभ लक्षणों से सहित थे, आद्यसंहनन—वज्रवृषभ नाराच संहनन से युक्त थे, समचतुरस्र—संस्थान से सुशोभित थे, सौन्दर्य से अनुपम थे, अनन्त बलशाली थे, प्रियभाषी थे, चालीस धनुष ऊँचे थे, कनेर के फूल के समान प्रभा से सहित थे, और बहुत भारी सामर्थ्य से सहित थे ऐसे शान्ति जिनेन्द्र देदीप्यमान यौवन को प्राप्त हुए।।2–4।। दो प्रकार का पारमैश्वर्य उन्हीं का सुशोभित हो रहा था एक तो वाणी से उत्पन्न हुआ और दूसरा असाधारण लक्ष्मी से उत्पन्न हुआ।।5।।

तदनन्तर दृढरथ का जीव जो सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुआ था वह भी उन्हीं विश्वसेन राजा की यशस्वती रानी से चक्रायुध नामका यशस्वी पुत्र हुआ।।6।। शान्ति जिनेन्द्र उसे छोड़कर कभी क्षण भर के लिए भी अकेले नहीं रहते थे इससे जान पड़ता था मानों वे अपना और उसका पूर्वभव सम्बन्धी ज्ञाति सम्बन्ध को प्रकट कर रहे थे।।7।। अनुपम सौन्दर्य, विद्या और वैभव से सहित वह चक्रायुध भी भगवान् शान्ति जिनेन्द्र के दूसरे प्रतिबिम्ब के समान सुशोभित हो रहा था।।8।। कुमार स्थिति में शोभायमान उन भगवान् का जब पच्चीस हजार वर्ष का कुमार काल बीत गया तब पिता ने उन्हें राजलक्ष्मी का पाणिग्रहण कराया तथा ' यह क्रम है' ऐसा कहकर उन्हें लक्ष्मी का शासक बनाया।।9–10।। शान्ति जिनेन्द्र न सन्धि विग्रह आदि छह गुणों में सावधान रहते थे और न मन्त्री आदि प्रकृति वर्ग के प्रसन्न रखने का

ध्यान रखते थे, इच्छानुसार प्रवृत्ति करते थे तो भी वे राजमण्डल की प्रधानता को प्राप्त थे।॥1।। न कोई उनका शत्रु था, न उदासीन था, न मध्यम था फिर भी उनकी कोई लोकोत्तर अनिर्वचनीय विजयाभिलाषा सुशोभित हो रही थी।॥2।। वे यद्यपि गुप्तचरों से रहित थे तो भी लोककी संपूर्ण स्थिति को जानते थे और वृद्धों की सेवा नहीं करते थे तो भी विनय से सहित थे।॥3।।

वे साम और दान उपाय में समर्थ होकर भी न तो असत्य बोलते थे और न अल्प प्रदान करते थे। इसी प्रकार अनिस्त्रिंश—तलवार से रहित होकर भी (पक्ष में क्रूरता रहित होकर भी) राजधर्म के प्रवर्तक थे यह आश्चर्य की बात थी।॥4।। वे अन्तर के ज्ञाता होते हुए भी समस्त सेवकों का अपने समान पोषण करते थे और अंहकार से रहित होकर भी मानों अपना माहात्म्य प्रकट कर रहे थे।॥5।। उनके राज्य में कोई भी मनुष्य अनीति—नीति से रहित तथा अशिष्ट नहीं था। समस्त ऋतुओं से सुशोभित पृथिवी ही अनीति—अतिवृष्टि आदि ईतियों से रहित थी।॥6।। दीपक ही दिन के समय स्नेह—तैल से जली हुई बत्ती से सहित थे प्रतारण के मार्ग में अच्छी तरह संलग्न अन्य कामी मनुष्य स्नेह—प्रेम से पतित अवस्था से युक्त नहीं रहते थे।॥7।। शिलीमुखौघसंपात—भ्रमर समूह का सब ओर से पड़ना फूली लताओं पर ही होता था वहाँ के मनुष्यों पर शिलीमुखौघसंपात—वाण समूह की वर्षा नहीं होती थी। विकार समूह की स्थिति पाश फैलाने वाले लोगों के निवास स्थानों में ही थी अन्य मनुष्यों में नहीं।॥8।। दानोत्सेक—मदजल के उत्सेचन से संयुक्त हाथियों के गण्डस्थल ही थे वहाँ के मनुष्य दानोत्सेक—दान सम्बन्धी अंहकार से सहित नहीं थे। वश्यात्मा—जितेन्द्रिय मनुष्य ही सदा अपस्मार विकारकाः—काम सम्बन्धी विकार से रहित थे वहाँ के मनुष्य अपस्मार—मूर्च्छा की बीमारी से सहित नहीं थे।॥9॥ भ्रम—पर्यटन महलों में ही दिखायी देता था वहाँ के मनुष्यों में भ्रम—संदेह नहीं

दिखायी देता था। कलहासिका—चन्द्रमा जैसी चमक दमक तलवारों में ही थी। वहाँ के मनुष्यों में कलहासिका—कलह प्रियता नहीं थी। वियोग—पक्षियों का योग फले हुए वृक्षों पर ही प्रकट रूप से था वहाँ के मनुष्यों में वियोग—विरह प्रकट रूप से नहीं था।।20।। पर दार कर ग्रह—उत्तम स्त्रियों के हाथ का ग्रहण आभूषणों में ही था वहाँ के मनुष्यों में पर स्त्रियों के हाथ का ग्रहण नहीं था। विचार—तर्क वितर्क न्याय विद्या में ही था वहाँ के मनुष्यों में विचार—गुप्तचरों का अभाव नहीं था। नैर्गुण्य—डोरी का अभाव इन्द्र धनुष में ही था वहाँ के मनुष्यों में दया दाक्षिण्य अथवा सन्धि विग्रह आदि गुणों का अभाव नहीं था।।21।। समरागमनः स्थिति—सम—माध्यस्थ्यभाव रूपी राग से सहित मन की स्थिति सदा सत् पुरुषों की ही थीं अन्य मनुष्यों की समरागमनस्थिति—युद्ध प्राप्ति की स्थिति नहीं थी अर्थात् युद्ध करने का अवसर नहीं आता था। यदि कोई कम्पित होते थे तो स्त्रियों के लालित—प्रीतिपूर्ण मुख ही कम्पित होते थे वहाँ के मनुष्य भय से कम्पित नहीं होते थे।।22।। सन्धि और विग्रह शब्द—वर्णों का परस्पर मेल और समास का प्राग् रूप वैयाकरणों के मुख से ही सुनायी पड़ते थे अन्यत्र सन्धि—मेल और विग्रह—विद्वेष अथवा युद्ध के शब्द सुनायी नहीं पड़ते थे। इसी प्रकार अन्याय और दुर्गति ये शब्द कही जाने वाली कथाओं के बीच ही सुनायी पड़ते थे अन्यत्र नहीं।।23।। आशाभ्रमण—दिशाओं में भ्रमण करना मेघ में ही था वहाँ के मनुष्यों में आशाभ्रमण—तृष्णा से भ्रमण करना नहीं था। मार्गणासन—धनुष धनुर्धारी के पास ही था वहाँ के मनुष्यों में याचना का आश्रय नहीं था। पांसुला क्रीड़ा—धूलि उछालने की क्रीड़ा हाथी में ही थी वहाँ के मनुष्यों में पापपूर्ण क्रीड़ा नहीं थी। भिदा—फूट जाना घड़े में ही दिखाई देता था वहाँ के मनुष्यों में भिदा—भेदनीति नहीं दिखायी देती थी।।24।। इस प्रकार जब राजा शान्तिनाथ पूर्वोक्त स्थिति को आदि लेकर अन्य स्थिति—विभिन्न शासन पद्धति को विस्तृत कर रहे थे तब

उत्तम संतान युक्त प्रजा मार्ग का उल्लङ्घन नहीं करती थी।।25।। राजा विश्वसेन ने शान्तिनाथ के स्वकीय उत्साह तथा आग्रह से ही संतुष्ट हो कर चक्रायुध को युवराज पद पर अधिष्ठित किया।।26।। चक्रायुध पर शान्तिनाथ भगवान् की निरन्तर स्नेह पूर्ण दृष्टि रहती है यह देख लोग भी यह अनुमान करते थे कि इन दोनों का पूर्वभव का सम्बन्ध है।।27।। इस प्रकार पार्थिव—पृथिवी के होकर भी अपार्थिव—देवोपनीत स्वर्गीय भोगों को भोगते हुए शान्तिनाथ भगवान् के समभाव से पच्चीस वर्ष व्यतीत हो गये।।28।।

अथानन्तर किसी अन्य दिन शत्रुरहित शान्तिनाथ भगवान् सभा के बीच में विराजमान थे उसी समय शस्त्रों के अध्यक्ष ने बड़ी प्रसन्नता से नमस्कार कर यह सूचना दी।।29।। कि हे प्रभो! फैलती हुई कान्ति के समूह से देदीप्यमान चक्र रत्न उत्पन्न हुआ है और उसे देख ऐसा संशय होता है कि सूर्य को पराजित करने वाला आपका तेज ही क्या चक्र होकर बाहर स्थित हो गया।।30।। आपके उत्पन्न होते ही तीनों लोक किंकर हो गए थे अतः उस चक्ररत्न के द्वारा पृथिवी वश में की जाएगी। यह कथा तो दूसरे लोगों के लिए ही भली मालूम होती है।।31।। वह चक्र अन्य स्वर्ग के समान है क्योंकि जिस प्रकार अन्य स्वर्ग अन्तर्गत सहस्रार—सहस्रार नामक स्वर्ग को अपने अन्तर्गत किये हुए है उसी प्रकार वह चक्र भी हजार अरों को अपने अन्तर्गत किए हुए है। अथवा वह चक्र कुबेर के स्थान के समान है क्योंकि जिस प्रकार कुबेर के स्थान की सदा यक्ष सेवा किया करते हैं उसी प्रकार उस चक्र की भी यक्ष सेवा किया करते हैं।।32।। वह यथोक्त ऊँचाई से संयुक्त होने पर भी प्रांशुतया—प्रकृष्ट किरणावली से सहित है तथा विदूरीकृत विग्रह—शरीर से रहित होने पर भी (पक्ष में युद्ध को दूर करने वाला होकर भी) प्रत्यक्ष सुशोभित होता है।।33।। जिसकी मूठ पद्मरागमणि की है ऐसा नील कमल के समान श्याम वर्ण वाला खड्ग भी उत्पन्न हुआ है। वह खड्ग

बालसूर्य—प्रातःकालीन सूर्य से सहित जल में आये हुए मच्छ के समान जान पड़ता है।।34।। एक देवोपनीत छत्र भी प्रकट हुआ है परन्तु समस्त जगत् के संताप को दूर करने वाले आपके लिये वह दिव्य छत्र भी निरर्थक है ऐसा मानता हूँ।।35।। यद्यपि समस्त प्रजा समीचीन मार्ग में वर्तमान है तथापि नाना प्रकार के रत्नों से तन्मय दण्ड स्वयं प्रकट हुआ है।।36।। हे नाथ! जो आपकी गन्ध से स्पर्द्धा होने के कारण ही मानों समस्त दिशाओं को सुगन्धित कर रहा है तथा संकोचित और विस्तृत होना जिसका स्वभाव है ऐसा सुवर्ण के समान प्रभावाला चर्म रत्न उत्पन्न हुआ है।।37।। जो बाल सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान किरणों के द्वारा आकाश को लाल लाल पल्लवों से आच्छादित करता हुआ सा जान पड़ता है ऐसा काकिणी रत्न प्रकट हुआ है।।38।। हे देव! जो लोक के आभूषण स्वरूप आपका भी आभूषण होगा उस चूड़ामणि की महिमा किसके द्वारा कही जा सकती है?।।39।। जिसका शरीर सब ऋतुओं में सुन्दर है, तथा जो प्रकामफल दायिनी—प्रकृष्ट काम रूपी फल को देने वाली है (पक्ष में इच्छित फल को देने वाली है) ऐसी कल्पलता के समान कोई निर्वचनीय कन्या विद्याधरों के द्वारा आपके लिये लायी गयी है।।40।। जो इच्छानुसार गमन करता है, इच्छानुसार रूप धारण करता है, व्यन्तरेन्द्र के द्वारा भेजा गया है और चलते फिरते सुमेरु पर्वत के समान जान पड़ता है ऐसा हाथी—गजरत्न द्वार पर विद्यमान है।।41।। जो धनुष के समान अन्यत्र न पाये जाने वाले वेग से सहित है तथा सुडौल है ऐसा घोड़ा देवों ने आपके निवास गृह के आंगन में खड़ा कर दिया है।।42।। जो विक्रम—पराक्रम (पक्ष में ऊँची छलांग) के द्वारा प्रोत्तुङ्ग—श्रेष्ठ (पक्ष में ऊँचे) भूभृतों—राजाओं (पक्ष में पर्वतों) को भी नीचे कर रहा है ऐसा सिंह के समान कोई सेनापति सहसा आ कर उपस्थित हुआ है।।43।। जो समस्त शिल्पों से तन्मय है ऐसा मय नामका स्थपति अपने माहात्म्य को न छिपाता हुआ गुह्यको—देवविशेषों

(सहायकों) के साथ कर्मशाला में बैठा है।।44।। जो भीतर छिपे हुए हजार नेत्र तथा हजार भुजाओं के व्यापार से सुशोभित है ऐसा कोषाध्यक्ष कहीं से आ कर कोष गृह में प्रकाशित हो रहा है।।45।। जो आपके मूर्तिमान् ज्ञान के समान जान पड़ता है ऐसा मन्त्री सब जीवों के हित के लिये मन्त्रशाला में बैठा हुआ दीपक के समान देदीप्यमान हो रहा है।।46।। इस प्रकार हे जगत्पते! पृथिवी लोक में दुर्लभ चौदह रत्न नौ निधियों के साथ प्रकट हुए हैं।।47।। इस प्रकार कहने वाले आयुधाध्यक्ष के मनोरथों को पहले पूर्ण कर—उसे इच्छित पुरस्कार देकर पश्चात् शान्ति जिनेन्द्र ने चक्रायुध ने साथ चक्ररत्न की पूजा की।।48।। तदनन्तर उनके पीछे आ कर चक्र के रत्नों और निधियों के साथ तीन प्रदक्षिणाएं देकर जगत्पति—शान्तिनाथ जिनेन्द्र को समीप से नमस्कार किया।।49।।

तदनन्तर जो उच्च स्वर से जय जय शब्द का उच्चारण कर रहे थे, आश्चर्य से परिपूर्ण थे ओर जिनके मस्तक लीला से—अनायास ही नम्रीभूत थे ऐसे देव आकाश में प्रकट हुए।।50।। सब चक्रवर्ती चक्ररत्न को नमस्कारकरते हैं तथा पूजते हैं परन्तु यही बड़ा आश्चर्य था कि वह चक्ररत्न ही शान्ति जिनेन्द्र को नमस्कार करता है।।51।। इन शान्ति जिनेन्द्र में समस्त लोक से बढ़कर कोई अनिर्वचनीय लक्ष्मी निवास करती है ऐसा कितने ही देव सभा के भीतर चारों ओर कह रहे थे।।52।। जिन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक से लगा रक्खे थे ऐसे मन्त्री और सेनापति ने प्रणाम कर शन्तिनाथ जिनेन्द्र से उस समय के योग्य इस प्रकार निवेदन किया।।53।। इस भरत क्षेत्र में भरत आदि चार चक्रवर्ती हो चुके हैं चक्र के रहते हुए भी कठिनाई से ही मानों सब को वश में किया था।।54।। परन्तु आप तो जिनका पुण्य प्रभाव तीनों लोकों में अस्खलित है ऐसे धर्म चक्र के नेता हैं। आपके लिये यह साम्राज्य आनुषङ्गिक अर्थात् गौण है यह बालक भी समझता है। भावार्थ—इस साधारण चक्ररत्न से आपकी महिमा नहीं है क्योंकि आप उस धर्मचक्र के नेता हैं

जिसका प्रभाव षट् खण्ड में ही नहीं तीनों लोकों में भी अस्खलित है । यह साम्राज्य आपके लिए आनुषङ्गिक–अनायास प्राप्त होने वाला गौण है। यह बालक भी जानता है।।55।। फिर भी इस चक्ररत्न के उपरोध से ही आपको चक्रवर्तियों का क्रम जो दिग्विजय आदि है वह करना चाहिये।।56।।

इस प्रकार शान्ति जिनेन्द्र से निवेदन कर तथा उनकी आज्ञा प्राप्त कर मन्त्री और सेनापति ने दिग्विजय के लिए जोर से भेरी बजवा दी।।57।। भेरी का शब्द छह खण्डों में एक साथ व्याप्त हो गया। वह शब्द जहाँ–जहाँ स्थित लोगों के द्वारा सुना गया था वहाँ–वहाँ उत्पन्न हुआ सा सुना गया था।।58।। तदनन्तर जिनके आगे–आगे चक्र चल रहा था ऐसे प्रभु ने गजराज पर आरूढ हो नगर से निकल कर पूर्व दिशा के उपवन में प्रस्थान किया।।59।। वहाँ उन्होंने माननीय राजाओं तथा सेना के निवास से सुशोभित, मय के द्वारा निर्मित रत्न और लकड़ी से बने हुए महल में निवास किया॥60॥ वहाँ सभा में बैठे हुये धीर वीर भगवान यद्यपि तीन ज्ञान के धारक थे तो भी वृद्धजनों से पूर्व चक्रवर्तियों की कथा को सुनते हुए साधारण जन के समान आनन्द लेते रहे।।61।।

तदनन्तर दिन समाप्त होने पर राजाओं का यथा योग्य सन्मान कर वे बाह्य सभा को छोड़ अभ्यन्तर सभा में प्रविष्ट हुए।।62।। वहाँ पहले से बैठे हुए मन्त्री और सेनापति आदि के द्वारा आदर पूर्वक दूर से ही जिनकी अगवानी की गयी थी ऐसे नरोत्तम–शान्ति जिनेन्द्र सिंहासन पर बैठे।।63।। 'आप लोग बैठिए' इस प्रकार भगवान् ने जिनसे स्वयं कहा था उन मन्त्री तथा सेनापति आदि रत्नों ने उस समय अपने आपको रत्न जैसा ही बहुत माना था।।64।। तदनन्तर प्रकरण के अनुरूप वार्तालाप कर तथा चिरकाल बाद उन्हें विदा कर रात्रि का प्रारम्भ भाग सघन होने पर भगवान् निवास गृह में गये।।65।।

तत्पश्चात् प्रस्थान के कोशों की संख्या से जब रात्रि के तीन प्रहर व्यतीत हो गये तब सेनापति की आज्ञा से भगवान् की भेरी शब्द करने

लगी।।66।। उस भेरी के शब्द ने एक साथ समस्त शिविर को जागृत कर दिया और तिर्यंचों के भी मन को उत्सव तथा उत्साह से भर दिया।।67।। तोरण के समीप राजाओं के अपने–अपने चिह्नों से सहित, जोरदार शब्द करने वाले शङ्ख काहल और तुरही अत्यधिक शब्द करने लगे।।68।।

प्रयाण से हर्षित सेना का बहुत भारी कल–कल शब्द जब क्रम से निरन्तर विश्व को व्याप्त कर रहा था, बिना बुलाये आये हुए अनेक सेवकों ने जब कार्य प्रारम्भ कर दिया था, जब भवन के व्यवस्थापक लोग अनुष्ठानों–कार्यकलापों से व्यग्र हो रहे थे, जब प्रत्येक डेरे का बाह्य अन्धकार नीले रङ्ग के परदे के समान काकिणी रत्न की कान्ति के द्वारा तत्काल दूर किया जा रहा था, भूमि से ऊपर उठाये जाने वाले बड़े ढेरों से कहारों द्वारा निकाली जाने वाली पेटियों से जब राज मन्दिर का आंगन संकीर्ण हो रहा था, गले में लटकने वाले वाद्य विशेष, धोंकनी आदि तथा कण्ठालों (?) से जब ऊँट उछल–उछल कर सर्वत्र दौड़ रहे थे, सौन्दर्य रूप सम्पदा के गर्व से जिन्होंने बहुत भारी आभूषण धारण किये थे तथा जो कामदेव के साधन के समान जान पड़ती थी ऐसी वेश्याओं के समूह से जिसका अभिनन्दन किया जा रहा था, आगे चलाये जाने वाली गाड़ियों के पहियों के समूह की बहुत भारी चित्कार से परस्पर का वार्तालाप न सुन सकने से जब भार वाहक लोग विसंवाद को प्राप्त हो रहे थे, जब बड़ी थोंद वाले मनुष्यों के सैकड़ों वार्तालापों से हँसने वाले पड़ौसी लोग वेश्याओं के शयन आदि उपकरणों को ले जा रहे थे, जब नगाड़ों के शब्द को रोकने वाले शृङ्खला के शब्द से उन्मत्त हस्ति समूह के संचार के भय से लोग दूर भाग रहे थे, जब अन्तर को न जानने वाले नये सेवक सेनापति की आज्ञा को स्वेच्छावश अनादर से किसी तरह सम्पन्न करने के लिए तत्पर हो रहे थे, जब इच्छानुसार वाहनों पर बैठे हुए सेनाओं सहित राजकुमारों के द्वारा राजाधिराज

शान्ति जिनेन्द्र के भवन सम्बन्धी द्वारों के दोनों ओर के प्रदेश व्याप्त हो रहे थे, और जब सेवकजन सेनापति के आगे चलने वाले दण्ड रत्न के द्वारा आगे का मार्ग निश्छल रूप से समान कर रहे थे ऐसा प्रस्थान का समय आने पर स्तुतिपाठक चारणों के जागरण–गीतों से जागे हुए त्रिलोकीनाथ शान्ति जिनेन्द्र ने यथायोग्य सत्कारों से राजाओं का सन्मान कर तथा जयपर्वत नामक हाथी पर सवार हो दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। उस समय वे प्रस्थान के योग्य वेष को लीला पूर्वक धारण कर रहे थे।।69–82।।

उस समय यद्यपि दिन की लक्ष्मी बालरूप थी–प्रातःकालीन थी तो भी दिशाओं के अग्रभाग को व्याप्त करने वाले राजाओं के मुकुटों के प्रकाश उसे मानों अत्यन्त वृद्धिंगत कर रहे थे–मध्याह्न के समान सुविस्तृत कर रहे थे।।83।। तदनन्तर चक्रायुध नामक भाई जिनके आगे चल रहा था ऐसे चक्रायुध–चक्ररूप शस्त्र के धारक चक्रवर्ती शान्ति जिनेन्द्र के चलने पर समस्त पृथिवी सेना से तन्मय जैसी हो गयी।।84।। शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा न केवल दिशाओं का समूह भर गया था किन्तु उनकी टापों से खुदी हुई धूलि के द्वारा संसार का मध्यभाग भर गया था।।85।। हस्तिसमूह के जोर दार शब्द से बढ़ते हुए रथों के शब्द ने न केवल जनसमूह के कानों को व्याप्त किया था किन्तु हिमवत् पर्वत की गुफाओं को भी व्याप्त कर लिया था।।86।। 'यह क्या है?' इस प्रकार घबड़ाये हुए मागधदेव के समीपवर्ती लोगों ने पैदल सैनिकों के कोलाहल के साथ शङ्खों का शब्द सुना।।87।। आशा–निरोधि–दिशाओं को रोकने वाली (पक्ष में अभिलाषाओं को रोकने वाली) होकर भी जो पूरिताखिललोकाश–संपूर्ण लोक की दिशाओं को पूर्ण करने वाली (पक्ष में सब लोगों की अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली) थी ऐसी उस सेना ने अपने शब्द के द्वारा आकाश और पृथिवी रूप दोनों मार्गों को रोक लिया था–व्याप्त कर लिया था।।88।। जहाँ

प्रयाण के बीच आये हुए जङ्गल के हरिण और पक्षी भी चतुर मनुष्यों के समान भयभीत नहीं हुए थे वहाँ भय की बात ही क्या थी?।।89।। उस सेना में न तो दुर्बल बैलों का समूह बहुत भारी कीचड़ के भीतर निमग्न हुआ था, न उद्दण्ड ऊँटों का समूह ही अत्यधिक भीड़ से उछला था और न पैदल सैनिकों ने भी शान्ति जिनेन्द्र की अदृष्ट पूर्व बहुत भारी विभूति के देखने से मार्ग सम्बन्धी परिश्रम प्राप्त किया था।।90–91।।

चक्रवर्ती का प्रयाण देखने के लिये ऋतुएं भी कुतूहल वश देशवासी लोगों के साथ उपवन के वृक्षों पर आरूढ होकर स्थित हो गयीं थी।।92।। सैनिकों के अवगाहन–भीतर प्रवेश करने से भी जलाशय क्षोम को प्राप्त नहीं हुए थे सो ठीक ही है क्योंकि उस प्रकार के प्रभु का उद्यम किसी के क्षोम के लिये नहीं था।।93।। तदनन्तर आकाश और पृथिवीतल को व्याप्त करने वाली षडङ्गसेना को देख कर भाई चक्रायुध ने जगत् के अद्वितीय स्वामी शान्ति जिनेन्द्र से कहा।।94।।

हे चक्रपते! आपकी यह सेना लक्ष्मी के क्रीड़ाकमल के समान आचरण कर रही है क्योंकि जिस प्रकार लक्ष्मी का क्रीड़ाकमल अनेक पत्र सम्पत्ति–अनेक दलों से युक्त होता है उसी प्रकार यह सेना भी अनेक वाहनों से युक्त है, जिस प्रकार लक्ष्मी का क्रीड़ाकमल नेत्रानन्दि–नेत्रों को आनन्द देने वाला होता है उसी प्रकार यह सेना भी नेतृ+आनन्दि–नायकों को आनन्द देने वाली है और जिस प्रकार लक्ष्मी का क्रीड़ा कमल विकण्टक–कांटों से रहित होता है उसी प्रकार यह सेना भी विकण्टक–क्षुद्र शत्रुओं से रहित है।।95।। यह भ्रमरों की पंक्ति वेश्या के समान उद्दामदान–बहुत भारी मद (पक्ष में बहुत भारी धन प्राप्ति) के लोभ से निरन्तर मत्तमातङ्ग–मदोन्मत हाथियों (पक्ष में उन्तम चाण्डालों) की संगति करती है।।96।। मन्त्रियों के समान सुशिक्षित और स्वविग्रह–अपने शरीरों (पक्ष में अपने द्वारा आयोजित युद्धों) के द्वारा शत्रुओं के भेदन करने में (शत्रुओं को फोड़ने में) निपुण गजराजों के

द्वारा रुकी हुई दिशाएं सुशोभित हो रही हैं।97।। लगाम के प्रयोग करने में कुशल (पक्ष में वशीकरण क्रिया में चतुर) नेताओं के द्वारा जो बड़ी कठिनाई से वश में किये गये हैं ऐसे ये तेजस्वी घोड़े और श्रेष्ठ योद्धा जा रहे हैं।98।। यह उन्मत्त हाथी शून्यासन होकर भी पीछे से आये हुए महावत को उसकी अनुकूलता को कहते हुए के समान चढ़ा रहा है।99।। रथ यद्यपि इच्छानुसार चल रहे हैं तो भी चिरकाल के जितेन्द्रिय मनुष्यों की चाल के समान उनकी चाल रजः क्षोभ–धूलि के क्षोभ को (पक्ष में पाप के क्षोभ को) नहीं कर रही है।।100।। नदियाँ पूर्वभाग से तो निम्नगा–नीचे की ओर ही बहने वाली हैं परन्तु सेना के उतरने सम्बन्धी रुकावट से पिछले भाग से उल्टा बहने लगी हैं। भावार्थ–नीचे की ओर जाने के कारण नदी का नाम निम्नगा है। उनका सेना उतरने के पूर्व पहले का जो भाग था वह तो नीचे की ही ओर जा रहा था परन्तु सेना उतरने के कारण ऊपर का प्रवाह रुक गया अतः वह ऊपर की ओर जाने लगा है।।101।। निधियों के द्वारा दिये जाने वाले धन से यहाँ कोई दरिद्र नहीं रहा है ये राजा दरिद्रता से निकल कर आपको नमस्कार करने के लिये आ रहे हैं।।102।। हे नाथ! यद्यपि एक आप ही विजिगीषु राजा हैं तथा अन्य राजाओं के लिये एक आप ही यातव्य–प्राप्त करने योग्य हैं तथापि नीतिज्ञता एक आप में ही संगत हो रही है।।103।। हे सर्वहितकर्ता! अपने पुण्य और फलों के भार से नम्रीभूत वृक्ष और लताएं सब ऋतुओं की संपत्ति को प्रकट कर रही हैं।।104।। मन्द वायु से कम्पित पल्लव रूपी अञ्जलियों के द्वारा पुष्प मिश्रित अर्घ को बिखेरती हुई ये लताएं लाई की वर्षा करने वाली नागरिक स्त्रियों के समान सुशोभित हो रही हैं।।105।। न्याय के कथन करने की इच्छा से ही जो खिले हुए मुख कमलों से सहित हैं तथा जो उत्तम सन्तति से युक्त हैं ऐसे ये प्रजाजन सब ओर से आपका दर्शन करने के लिये दूर–दूर से आ रहे हैं।।106।। प्रतिपक्ष–शत्रु का अभाव होने से जो शस्त्र विषयक कौशल

प्रयोग से रहित होता है उसे उसके ज्ञाता मनुष्य अच्छा नहीं मानते। इसी प्रकार प्रतिपक्ष--शङ्का पक्ष का अभाव होने से जो शास्त्र विषयक कौशल हेतु प्रयोग से रहित होता है उसे वाद कला के पारगामी पुरुष अच्छा नहीं मानते।।107।।

हे नाथ! यह जगत् आपके इस प्रयाण से अन्याय निर्मुक्त होता हुआ भी अन्याय से सहित है यह आश्चर्य की बात है (परिहार पक्ष में अन्य आर्यों से सहित है)।।108।। हे अनवद्याङ्ग! हे निर्मल शरीर के धारक! शान्ति जिनेन्द्र! राग--लाल रङ्ग के निर्दोष अङ्गराग--विलेपन से शोभायमान ये पैदल सैनिक देदीप्यमान होते हुए के समान जा रहे हैं।।109।। जो सन्धि विग्रह आदि छह गुणों का समूह योगक्षेम का कारण कहा गया है वह राजाओं के नेतास्वरूप आप में प्रारम्भ से ही वर्तमान है।।110।। सभी ओर रत्नों की खानों को प्रकट करने वाली वसुन्धरा--पृथिवी न केवल नाम से वसुन्धरा है किन्तु क्रिया से भी वसुन्धरा--धन को धारण करने वाली है।।111।। इस प्रकार जब चक्रायुध मार्ग--सम्बन्धी वाणी को प्रकट कर रहे थे तब सैनिकों द्वारा हर्ष पूर्वक देखे गये प्रभु सेना के पड़ाव को प्राप्त हुए।।112।। आज्ञा से स्थित द्वारपालों के द्वारा जिनके अनुगामी राजाओं को बीच में ही विदा कर दिया गया था ऐसे शान्तिप्रभु ने इन्द्रभवन के तुल्य अपने निवास गृह में प्रवेश किया।।113।।

शान्ति जिनेन्द्र की सेना सुमेरु शिखर की शोभा को धारण कर रही थी क्योंकि जिसप्रकार सुमेरु शिखर कल्याणमय--सुवर्णमय होता है उसी प्रकार सेना भी कल्याणमय--मङ्गलमय थी, जिस प्रकार सुमेरु शिखर अत्युद्ध--अत्यन्त प्रशस्त होता है उसी प्रकार सेना भी अतिशयप्रशस्त थी, और सुमेरु शिखर जिस प्रकार महाभाग--देव विद्याधर आदि महा पुरुषों से सहित होता है उसी प्रकार सेना भी उत्कृष्ट महानुभावों से सहित भी।।114।। उनकी सेना की निवास भूमि,

बहुत भारी राजाओं की विभूति से ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों स्वामी और सेवक के सम्बन्ध का आश्रय कर होने वाली दूसरी भोग भूमि ही हो।।115।। जिसने अपरिमित धन सम्पदा के द्वारा आठ वसुओं से प्रसिद्ध तथा ऊपर स्थित स्वर्ग को भी अधःकृत—नीचा कर दिया।।116।। दानशील निधियों से सहित जो वसति यद्यपि ख्यातपुण्य जनाधारा—प्रसिद्ध यक्षों के आधार से प्रसिद्ध थी (पक्ष में प्रसिद्ध पुण्य शाली जीवों के आधार से प्रसिद्ध थी) तथा राजराज—कुबेर (पक्ष में चक्रवर्ती) से सहित थी तो भी वह कान्ति से अलकापुरी की अच्छी तरह हँसी करती थी।।117।।

वह सब ओर से यद्यपि छियानवे कोश विस्तृत थी तो भी अनन्तभोगी—शेषनाग के सम्बन्ध से (पक्ष में बहुत अधिक भोगीजनों के संबंध से) नाग लोक पाताल लोक की स्थिति को धारण कर रही थी।।118।। उस निवास भूमि को देव भी आश्चर्य चकित होकर चारों ओर से देखते थे फिर ग्रामीण लोग कौतुक से आकर देखते थे इसकी कथा ही क्या है?।।119।। देदीप्यमान मरकत मणियों की कान्ति से जहाँ हरे हरे घास के मैदान नतोन्नत हो रहे थे तथा जहाँ की एकान्त अथवा पवित्र भूमियाँ पुष्पित वृक्षों और लताओं से व्याप्त थीं ऐसी उसकी समीपवर्ती भूमियाँ काम की जन्म भूमियाँ बन रहीं थी अथवा उसकी कान्ति से मानों भोग भूमियाँ तिरस्कृत हो रही थीं।।120–121।। वहाँ राजभवन के चारों ओर पहले से जो सांकेतिक ध्वजाएं लगायीं गयीं थी उनके द्वारा ही सैनिक लोग बड़ी कठिनाई से अपने–अपने डेरों की ओर जा रहे थे।।122।। जिनका हृदय परोपकार में लीन था ऐसे शान्ति जिनेन्द्र निधियों के प्रभाव से प्रजा के कृतकृत्य होने पर हर्षित हो रहे थे।।123।।

तदनन्तर जिन्होंने किरणों के संचार को रोक लिया था ऐसी फहराती हुई सेना की ध्वजाओं से प्रेरित होकर ही मानों सूर्य आकाश से

नीचे उतरा अर्थात् अस्त होने के सन्मुख हुआ।॥24।। शान्ति जिनेन्द्र के प्रजामण्डल को अनुरक्त–लाल (पक्ष में प्रेम से युक्त) देखकर ही मानों सूर्य ने तीक्ष्णता को छोड़ कर अपने मण्डल–बिम्ब को अनुरक्त–लाल कर लिया था।॥25।। सेना निवास की शोभा को देखने के लिये इच्छुक होकर ही मानों सूर्य ने अस्ताचल की ऊँची शिखर पर क्षणभर का विलम्ब किया था।॥26।। प्रत्येक जलाशय में सूर्य का प्रतिबिम्ब ऐसा दिखायी देता था मानों वह तरङ्गों की ध्वनि के बहाने जाने के लिये कमलिनी से पूछ ही रहा हो–प्रेयसी से आज्ञा ही प्राप्त कर रहा हो।॥27।। वारुणी–पश्चिम दिशा (पक्ष में मदिरा) के सेवन से सूर्य ने भी शीघ्र ही अम्बर त्याग–आकाश त्याग (पक्ष में वस्त्र त्याग) तेजोहानि–प्रताप हानि (पक्ष में प्रभावहानि) और सुरागत–अत्यधिकलालिमा (पक्ष में अत्यधिक प्रीति) का अनुभव किया था।। भावार्थ–जिस–प्रकार मदिरा का सेवन करने से मनुष्य शीघ्र ही अम्बरत्याग, तेजोहानि और सुरागता को प्राप्त होता है उसी प्रकार पश्चिम दिशा का सेवन करने से सूर्य भी अम्बरत्याग–आकाशत्याग, तेजोहानि–प्रतापहानि और सुरागता–अतिशय लालिमा को प्राप्त हुआ था।॥28।। जिस प्रकार जंगली हाथी के द्वारा उल्टे उखाड़े हुए महावृक्ष की लम्बी–लम्बी जड़ें ऊपर की ओर हो जाती हैं उसी प्रकार दिन के द्वारा पश्चिम दिशा में प्रेरित सूर्य की किरणें ऊपर की ओर रह गयी थीं। भावार्थ–अस्तोन्मुख सूर्य की किरणें ऊपर की ओर ही पड़ रही हैं नीचे की ओर नहीं।॥29।। जो अग्नि सूर्यकान्त मणियों से उत्पन्न हुयी थी वह सायंकाल के समय 'ये सूर्यकान्त हैं–सूर्यकान्त मणि हैं (पक्ष में सूर्य के प्रेमी हैं) इस वाक्यच्छल से ही मानों चकवों को प्राप्त हुयी थी। भावार्थ–सूर्यास्त होने से चकवा चकवी परस्पर वियुक्त होकर लोकनिमग्न हो गये।॥30।। उस समय एक कमल वन ऐनी सूर्य सम्बन्धी (पक्ष में स्वामि सम्बन्धी) पाद सेवा–चरण सेवा (पक्ष में किरणों की सेवा) को न प्राप्त कर संकोचित हो गया था और

दूसरा (कुमुद वन) अत्यधिक पाद सेवा (चरण सेवा) को प्राप्त कर विकसित हो गया था। भावार्थ--यहाँ इन का अर्थ सूर्य और स्वामी है तथा पाद का अर्थ किरण और चरण है। सायंकाल के समय सूर्य की किरणों को न पाकर कमल वन संकोचित हो गया था और कुमुद वन स्वामी के चरणों की सेवा प्राप्त कर अत्यन्त हर्षित हो गया था।।॥31।।

पश्चिम दिशा में लाल लाल संध्या ऐसी दिखायी देती थी मानों सूर्य के मार्ग में लगी हुयी लाल कमलों की पंक्ति ही हो।॥32।। उस समय भौंरे कमल वन से उड़कर इधर–उधर मंडराने लगे थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानों काल के द्वारा बोये जाने वाले अन्धकार के बीज ही हों।॥33।। अपनी इच्छा से कहीं घूमकर दिन सम्बन्धी भोजनादि क्रिया को पूर्ण करने वाले तत्तद्देशीय पक्षी परस्पर वार्तालाप करते हुए अपने--अपने निवास स्थानों को पुनः प्राप्त हो गये।॥34।। क्षण भर में संध्या की संपूर्ण लालिमा समाप्त हो गयी जिससे ऐसा जान पड़ता था मानों पश्चिम समुद्र की लहरों के जो छींटे ऊपर की ओर जा रहे थे उनसे धुल गयी हो।॥35।।

उस समय दीपिकाओं को धारण करने वाले मनुष्य ऊपर उठाये हुये दीपकों के साथ राजाओं के पास पहुँचे और मालाकार चम्पा के फूलों से उज्ज्वल सेहरों के साथ राजाओं के पास पहुँचे। भावार्थ--दीपक जलाने का काम करने वाले लोग दीपक ले लेकर राजाओं के पास पहुँचे और मालाकार चंपा के फूलों से निर्मित सेहरा लेकर उनके पास गये।॥36।। धीरे–धीरे अन्धकार ने समस्त दिशाओं को रोक लिया और जब मानों उनमें भी नहीं समा सका तब वह मानवती स्त्रियों के मनों को भी प्राप्त कर विस्तृत हो गया।॥37।। द्वारों से निकलकर दूर तक फैले हुए बाह्य दीपकों की प्रभा समूह से डेरे ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानों ऐरावत हाथी की कान्ति को ही प्रकट कर रहे हों।॥38।।

अन्धकार से आच्छादित भ्रमरों का जो हुंकार हो रहा था उसे कामीजनों ने पड़ते हुए कामवाणों के पक्षों की सूत्कार की शङ्का सें डरते–डरते सुना था।॥39।। उस समय लोगों को काम तो प्रिय था परन्तु अन्धकार का उद्गम अप्रिय था जब कि दोनों ही समान रूप से अविवेक को उत्पन्न करते हैं। भावार्थ–जिस प्रकार काम अविवेक को करता है अर्थात् हिताहित का विवेक नहीं रहने देता उसी प्रकार अन्धकार भी अविवेक करता है अर्थात् काले पीले छोटे बड़े आदि के भेद को नष्ट कर देता है सब को एक सदृश कर देता है इस तरह काम और अन्धकार में समानता होने पर भी लोगों को काम इष्ट था और अन्धकार का उद्गत अनिष्ट।॥40।।

उस समय परस्पर विरोध करने वाली ज्योति और अन्धकार की स्थिति को धारण करने वाला आकाश मानों अपनी लोकोत्तर महत्ता को ही प्रकट कर रहा था। भावार्थ–जिस प्रकार महान् पुरुष शत्रु और मित्र–सबको स्थान देता हुआ अपना बड़प्पन प्रकट करता है उसी प्रकार आकाश भी विरोध करने वाली तारापंक्ति और अन्धकार दोनों को स्थान देता हुआ अपना सर्वश्रेष्ठ बड़प्पन प्रकट कर रहा था। अन्धकार का अन्त जानने के लिए चन्द्रमा के द्वारा नियुक्त किए हुए गुप्तचरों के समान ग्रह आकाश में स्पष्ट रूप से फैल गये।॥42।।

तदनन्तर गाढ अन्धकार से जगत् की रक्षा करने के लिए ही मानों वेग से जो चन्द्रमा आने वाला है उसकी चरण धूलि से पूर्व दिशा पहले ही धूसरित हो गयी।॥43।। चन्द्रमा के निकलते हुए किरण रूपी अंकुशों से उदयाचल ऐसा सुशोभित हो रहा था मानों केतकी के अग्रभागों में निर्मित माला को ही धारण कर रहा हो।॥44।। तदनन्तर मूँगा के समान लाल–लाल चन्द्रमा की कला दिखायी देने लगी जो ऐसी जान पड़ती थी मानों काम रूपी कल्प वृक्ष की प्रथम अंकुर की उत्पत्ति

हो।।45।। चन्द्रमा शुक्ल होने पर भी लाल होकर अन्धकार के सन्मुख उदित हुआ था सो ठीक ही है क्योंकि विजिगीषु भाव को छिपाकर शत्रु के प्रति कौन नहीं उद्यम करता है? अर्थात् सभी करते हैं।।46।। उस समय पर्वतों की दुर्गम गुफाएं चन्द्रमा से भागते हुए लोक विरोधी अन्धकार की अपसार भूमियाँ हुई थीं।। भावार्थ—जिस प्रकार राजा के भय से भागने वाले लोक विरोधी शत्रु को जब कोई शरण नहीं देता है तब वह पर्वतों की गुफाओं में छिपकर अपने विपत्ति के दिन काटता है उसी प्रकार चन्द्रमा के भय से भागने वाले लोकविरोधी अन्धकार को जब किसी ने शरण नहीं दी तब वह पर्वत की दुर्गम गुफाओं में रह कर अपना विपत्ति का समय व्यतीत करने लगा।।47।।

जिसने अन्धकार को समाप्त कर दिया था ऐसा चन्द्रमा प्रसन्न हो गया—पूर्णशुक्ल हो गया सो ठीक ही है क्योंकि शत्रु का अभाव हो जाने से सत्पुरुष क्रोध नहीं करते हैं। भावार्थ—अन्धकार रूप शत्रु के रहने से पहले चन्द्रमा क्रोध के कारण लाल था परन्तु जब अन्धकार नष्ट हो चुका तब वह क्रोधजन्य लालिमा से रहित होने के कारण शुक्ल हो गया।।48।। तदनन्तर चन्द्रमा के हाथ के स्पर्श से (पक्ष में किरणों के स्पर्श से जिनका वस्त्रतुल्य अन्धकार स्खलित हो गया है ऐसी दिशाएं तरलतारका—आँख की चंचल पुतलियों से सहित (पक्ष में चंचल ताराओं से सहित) हो गयीं। भावार्थ—यहाँ स्त्रीलिंङ्ग होने से दिशाओं में स्त्री का आरोप किया है जिस प्रकार पति के हाथ के स्पर्श से कामातुर स्त्रियों का वस्त्र स्खलित हो जाता है और उनके नेत्रों की पुतलियाँ चंचल हो जाती हैं उसी प्रकार चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से दिशाओं का अन्धकार रूप वस्त्र स्खलित हो गया और तारारूपी पुतलियाँ चंचल हो उठीं।।49।। चन्द्रमा का उदय होने पर समुद्र क्षोभ को प्राप्त हो गया सो ठीक ही है क्योंकि दोषाकर—दोषों की खान (पक्ष में निशाकर—चन्द्रमा) का उदय किनके हार्दिक क्षोभ के लिए नहीं होता?।।50।। अन्धकार को

नष्ट करने वाली चन्द्रमा की किरणों से कुमुदाकर–कुमुदों का समूह उस तरह बोध विकास को प्राप्त हो गया जिस तरह कि मुनिराज के अज्ञानापहारी वचनों से करुण हृदय वाला पवित्र भव्यसमूह बोध–ज्ञान को प्राप्त हो जाता है।।51।।

तदनन्तर आशाओं–दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ चन्द्रमा आकाश में संलग्न हो गया–आकाश के मध्य में जा पहुँचा और आशाओं–आकाङ्क्षाओं को प्रकाशित करता हुआ मानापहारी काम शीघ्र ही कामी पुरुषों के मन में संलग्न हो गया अर्थात् कामीजनों के मन काम से विह्वल हो गये।।52।। चतुर वेश्याएं शक्ति–सामर्थ्य की अपेक्षा कर कामीजनों में अर्थ की सिद्धि के लिये सन्धि और विग्रह का विस्तार करने लगीं। भावार्थ–चतुर वेश्याएं धन की प्राप्ति के लिए कुपित प्रेमियों से सन्धि और प्रसन्न प्रेमियों से विग्रह–विद्वेष करने लगीं।।53।। कोई एक उत्कण्ठिता स्त्री पति को लाने के लिए दूती को भेजकर भी स्वयं चल पड़ी सो ठीक ही है क्योंकि काम दुःख से सहन करने के योग्य होता है।।54।।

जो पति के द्वारा संकल्पित समागमों से बार–बार अच्छी तरह ठगी गयी थी अर्थात् जिसका पति आश्वासन देकर भी नहीं आता था ऐसी कोई भली स्त्री साक्षात् आये हुए भी पति का विश्वास नहीं कर रही थीं।।55।। क्या वह मुझ में विरक्त हो गया है? या किसी स्त्री ने उसे बलपूर्वक रोक लिया है? अथवा वह धूर्त इस समय मेरी मनोवृत्ति को जानना चाहता है? इस प्रकार पति के न आने पर जो कारण का विचार कर रही थी ऐसी कोई स्त्री पति को आया हुआ देख सकामा–काम सहित होने पर भी वास्तविक रूप से निवृत्ति–निर्वाण को प्राप्त हुई थी (पक्ष में सुख को प्राप्त हुई थी)।।56–157।। बार–बार विरुद्ध आचरण करता है और तत्काल नमस्कार भी करने लगता है इस प्रकार जो इतना अस्थिर है कि न तो मेरी प्रीति को सुरक्षित रखने में समर्थ है

औरन छोड़ने में ही समर्थ है। हे सखि! उस अव्यवस्थित चित्त वाले पति से मुझे कार्य नहीं है। क्या समनस्क स्त्री पुरुषों के द्वारा मानिता—मानवता—मान से सहितपना मानिता—स्वीकृत नहीं है? अर्थात् स्वीकृत है। इस प्रकार के वचन कहने वाली कोई अन्य स्त्री पति के वहाँ आने पर भी अन्य के बहाने हँसने लगी थी परन्तु उसने धीरता को नहीं छोड़ा था।।158–160।।

आप अन्धे होने पर भी उद्देश मात्र से किसी तरह इतनी भूमि तक—इतने दूर तक आये हैं ऐसा एक स्त्री ने नाम भूलकर कहा।।161।। अधिक दूर कैसे आ गये? यह आपका भीरुपन क्या है? उत्तर क्यों नहीं देते? क्या मुनिव्रत—मौनव्रत ले रक्खा है।।162।। आपका मन तो दूसरे की ओर लग रहा है, जान पड़ता है यहाँ आप इन मित्रों के द्वारा लाये गये हैं। जो प्रेम दूसरे की प्रार्थना से होता है वह कितनी देर तक स्थित रहता है? अर्थात् बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है। इस प्रकार उदारता पूर्वक वाणी कह कर किसी एक वासरखण्डिता के सखी वाक्य के अनुरोध से पति को फिर से स्वीकृत कर लिया।।163–164।। इस प्रकार स्त्री पुरुषों के द्वारा जहाँ परस्पर का संगम प्रारम्भ किया गया था ऐसी रात्रि को व्यतीत कर शान्ति जिनेन्द्र ने मगध देश की ओर प्रस्थान किया।।165।। सेना के आक्रमण से गङ्गा नदी की वेदिका को गिराते हुए शान्ति जिनेन्द्र कुछ ही पड़ावों के द्वारा महासागर के समीप जा पहुँचे।।166।।

जब तक सैनिक वेलावन के समीप नहीं ठहरते हैं तब तक मागध देव वेला—जोरदार लहर के साथ शान्ति प्रभु की अगवानी के लिये आ गया।।167।। शान्ति जिनेन्द्र की सेना को आश्चर्य चकित करते हुए उस मागधदेव ने सेना सहित राजद्वार को प्राप्त कर द्वारपाल से निवेदन किया—अपने आने की सूचना दी।।168।। तदनन्तर राजाओं को दर्शन कराता हुआ वह द्वारपाल सभा में स्थित राजाधिराज शान्ति जिनेन्द्र के पास पहुँचा और प्रणाम कर इस प्रकार कहने लगा।।169।।

जो पहले भरत आदि के द्वारा बड़ी कठिनाई से वश में किया गया था वह मागध देव अग्रिम द्वार पर आकर चारण के समान आचरण कर रहा है।।70।। वह आपके दर्शन करना चाहता है अतः हे देव! उसके लिये कब कौन अवसर दिया जाएगा, इतना निवेदन कर द्वारपाल चुप हो गया।।71।। कुछ समय तक तो प्रभु सभासदों के साथ अन्य वार्तालाप करते हुए बैठे रहे। पश्चात् उन्होंने द्वारपाल को आज्ञा दी कि उसे प्रविष्ट कराओ। शान्ति जिनेन्द्र से प्रेरित हुआ द्वारपाल उनके कहने के अनन्तर ही बड़े आदर से मागध देव को भीतर ले गया। शीघ्र ही दर्शन प्राप्त हो जाने से मागध देव हर्षित हो रहा था।।72–173।। जो प्रत्येक द्वार पर नमस्कार करके जा रहा था, सब ओर रत्नमयी वृष्टि करता जाता था और कौतुक से खड़े हुए राजा लोग जिसे देख रहे थे ऐसे मागधदेव ने सभा में पहुँच कर राजाओं के मुकुटों से घिरी हुई प्रभु की पादपीठिका को मुकुटों के आलोक से बढ़ाते हुए उसकी पूजा की।।74–175।। चक्रवर्तियों के लिये जो कुछ देने योग्य निश्चित है उससे अधिक देकर मागध देव ने जगत्पति से इस प्रकार कहा।।76।।

आपके इस आगमन का कारण चक्र की उत्पति नहीं है। मैं तो महान् अभ्युदय से सहित अपने पुण्य को ही कारण मानता हूँ।।77।। अतीत चक्रवर्तियों के प्रस्थान से यह पूर्व दिशा रजस्वला–धूलिधूसरित (पक्ष में ऋतु धर्म से युक्त) हो गयी थी सो आपके शुभागमन से पवित्र हो गयी है।।78।। प्रजाओं ने पहले दोनों लोकों में कौन पुण्य कर्म किया था जिससे उसने आप जैसे स्वामी को प्राप्त किया।।79।। यद्यपि आप चक्रवर्तियों में पञ्चम हैं तो भी प्रभाव से प्रथम चक्रवर्ती हैं क्योंकि आप प्रभु का एक चक्र तो यह हो चुका है, दूसरा चक्र (धर्म चक्र) आगे होगा।।80।। हे लोकेश! आपके विषय में कोई कितना ही अधिक प्रिय क्यों न बोले परन्तु वह कभी असत्यवादी नहीं होता क्योंकि आप अनन्त गुणों से सहित हैं।।81।। इस प्रकार उत्कृष्ट प्रिय वचन कह कर तथा

बहुत काल तक प्रभु की सेवा कर प्रभु के द्वारा सन्मान पूर्वक विदा को प्राप्त हुआ मागधदेव अपने निवास स्थान को चला गया।।82।।

तदनन्तर वेलावन–तटवर्ती वन के उपभोग से जिनके समस्त सैनिक संतुष्ट थे ऐसे प्रभु ने समुद्र के किनारे दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया।।83।। निश्चय से मेघों को जीतने वाली हाथियों की पताकाओं से उपलक्षित वह सेना लवण समुद्र के वैजयन्त द्वार को प्राप्त हुई।।84।। वरतनु नामक देव ने बहुत भारी संपदा के साथ प्रभु की भूमि के सम्मुख आकर उनकी पूजा की और यथोक्त कर से अधिक कर दिया।।85।। तदनन्तर उन्होंने समुद्र के किनारे–किनारे पश्चिम दिशा में जा कर प्रभा के समूह से देदीप्यमान प्रभास नामक देव को दूर से ही नम्रीभूत किया।।86।। हर्ष से कितने ही पड़ाव तक साथ आने वाले अपने उस अनुकूल–अनुगामी देव को विदा कर समुद्र के किनारे चलती हुई प्रभु की सेना विजयार्ध की वनवेदिका को प्राप्त हुई और उसके मनोहर तोरण द्वार के समीप ठहर गयी।।87–188।।

तदनन्तर विजयार्द्ध कुमार देव के द्वारा जिन्हें अर्घादिक सत्कार दिया गया था ऐसे शान्ति प्रभु वहाँ से लौटकर तमिसा गुहा के द्वार पर आये।।89।। वहाँ आनन्द के भार से व्यग्र कृतमाल नामक देव ने बड़े आदर के साथ अपने हाथ से निर्मित मालाओं के द्वारा प्रभु की पूजा की।।90।। गुहामुख को खोल कर सेनापति कुछ समय के लिए पश्चिम खण्ड में चला गया और उस खण्ड को अनुकूल कर वहाँ से लौट आया।।91।। तदनन्तर गुहामुख की गर्मी शान्त हो चुकने पर प्रभु ने प्रताप से नम्रीभूत होने पर भी उत्तर भारत को जीतने के लिये प्रस्थान किया।।92।। जिस प्रकार सूर्य मण्डल अन्धकार को नष्ट कर देता है उसी प्रकार सेनापति ने प्रचण्ड किरणों से युक्त सूर्य के समान शोभावाले काकिणी रत्न के द्वारा गुहा के मध्य से अन्धकार को दूर हटा दिया।।93।। स्थपति के द्वारा जिन्होंने तत्काल पुल की रचना करायी थी ऐसे प्रभु ने उस गुफा के भीतर मिलने वाली निमग्न सलिला और उन्मग्न सलिला

नामक नदियों से सेना को पार उतारा था।।94।। वह कोलाहल से युक्त सेना वेग से गुफा के भीतर का मार्ग पार कर विजयार्ध पर्वत की वनवेदिका में जा ठहरी।।95।।

जब सेनापति प्रताप से पश्चिम खण्ड को पराजित कर वापिस लौट आया तब प्रभु मध्यम खण्ड की ओर गये।।96।। तदनन्तर वहाँ के राजाओं के नायक आवर्त और चिलात ने मेघमुख देवों के साथ आ कर प्रभु को नमस्कार किया।।97।। क्योंकि वे दोनों राजा वाण वर्षा न कर शीघ्र ही नम्रीभूत हो गये थे इसलिए छत्ररत्न तथा चर्मरत्न की शक्ति का माहात्म्य प्रकट नहीं हो सका।।98।। जिनके आगे आगे चक्ररत्न चल रहा था ऐसे शान्ति प्रभु ने अग्रभाग में वन की पुष्प मञ्जरियों को बिखेरने वाले प्रसन्न व्यन्तरों के साथ ऋषभाचल की ओर प्रयाण किया।।99।। तदनन्तर वहाँ, 'ऐरा और विश्वसेन का पुत्र कौरव वंशी, काश्यप गोत्री शान्तिनाथ, तीर्थंकर और चक्रवर्ती हुआ' इस प्रकार राजराजेश्वर शान्ति जिनेन्द्र ने पूर्व परम्परा से चला आया प्रशस्ति लेख अपने हाथ से लिखा सो ठीक ही है क्योंकि महापुरुषों का धन यश ही होता है।।200–201।। गङ्गा सिन्धु देवियों से सहित हिमवत्कूट के देव ने भी आकर पर्वत सम्बन्धी उपहारों से शान्ति प्रभु की सेवा की।।202।। वहाँ से लौटकर विजयार्ध पर्वत के निकट ठहरे हुए प्रभु के पास आकर विद्याधर राजाओं ने प्रज्ञप्ति नामक विद्या के द्वारा उनकी सेवा की।।203।। सेनापति खण्डपातनामक गुफा के द्वार को खोलकर तथा शीघ्र ही पूर्वखण्ड को नम्रीभूत कर वहाँ से लौट आया।।204।। तदनन्तर विजयी शान्ति जिनेन्द्र की वह सेना पहले के समान गुफा के मध्य से निकल कर अच्छी तरह विजयार्ध की दक्षिण वेदिका को प्राप्त हुई।।205।। अखण्ड पराक्रम का धारक तथा अश्रान्त–न थकने वाले सैनिकों से सहित सेनापति पूर्व खण्ड में गया और उसे वश कर शीघ्र ही लौट आया।।206।। इस प्रकार चक्ररत्न के उपरोध से समस्त पृथिवी को

जीतकर शान्ति जिनेन्द्र प्रीतिपूर्वक फहरायी हुई ध्वजाओं से युक्त कुरुदेव आ पहुँचे।।207।।

हमारे स्वामी समस्त पृथिवी को जीतकर आये हैं, इसलिये पहले से सम्मुख आकर सब ओर खड़े हुए प्रसन्न चित्त नागरिक जनों ने जिन्हें अर्घ दिया था ऐसे राजाधिराज शान्ति जिनेन्द्र ने देवों सहित बड़ी विभूति के साथ नगर में प्रवेश किया। उस समय महलों पर एकत्रित हुई स्त्रियाँ उनके अभ्युदय को देख रही थीं।।208।। जिन्होंने माता के गर्भ में आते ही समस्त तीनों लोकों को नम्रीभूत किया था उन प्रभु के लिए इस प्रकार की यह चक्रवर्ती की संपदा अत्यन्त उत्कृष्ट होने पर भी कितनी है? अर्थात् कुछ भी नहीं है ऐसा जानकर वन्दनाशील भव्यजनों ने समस्त भव्यजनों का उद्धार करने वाले उन शान्ति प्रभु की वर्तमान में छद्मस्थ होने पर भी आगे प्रकट होने वाले अरहन्त के गुणों की कल्पना कर स्तुति की थी।।209।।

इस प्रकार असग महाकवि द्वारा विरचित शान्ति पुराण में दिग्विजय का वर्णन करने वाला चौदहवां सर्ग समाप्त हुआ।।14।।

पच्चदशः सर्गः

अथानन्तर चक्रवर्ती के सुख रूपी अमृत का उपभोग करते हुए उन शान्तिप्रभु के पच्चीस हजार वर्ष व्यतीत हो गये।।1।। किसी अन्य समय समीचीन मार्ग का अवलम्बन करने वाली बुद्धि का आलम्बन कर वे शान्ति जिनेन्द्र संसार से निवृत्त हो अपने आप को मुक्त करने की इच्छा से इस प्रकार विचार करने लगे।।2।। अहो, बड़े आश्चर्य की बात है कि हित अहित का ज्ञाता होने पर भी अज्ञानी जन के समान मेरा बहुत बड़ा काल सुख प्राप्त करने की इच्छा से व्यर्थ ही व्यतीत हो गया।।3।। तदनन्तर लोक के अद्वितीय स्वामी शान्ति जिनेन्द्र, अवसर के ज्ञाता तथा विरक्ति के समर्थक लौकान्तिक देवों के समूह द्वारा बोधि–रत्नत्रय को प्राप्त हुए।।4।। सारस्वतादिक देवर्षियों के समूह ने उन प्रभु को भक्ति पूर्वक नमस्कार कर इस प्रकारकी अर्थपूर्ण वाणी कही।।5।।

हे नाथ! यह आपका गृह परित्याग का काल है क्योंकि अज्ञानी जीव ही संशय करता है आप तो भव्यजीवों में अग्रसर हैं।।6।। इस प्रकार प्रभु से इतनी वाणी कह कर लौकान्तिक देवों का समूह चुप हो गया सो ठीक ही है क्योंकि सज्जन वाचाल–व्यर्थ बहुत बोलने वाले नहीं होते हैं।।7।। इस प्रकार मोक्ष के इच्छुक शान्तिप्रभु लोकान्तिक देवों के उस वचन से तथा बहुत भारी आत्मज्ञान से दीक्षा लेने के लिये उत्सुक हो गये।।8।। जिनकी कीर्तिरूपी निधि लोक के अन्त तक विद्यमान थी ऐसे स्वामी शान्तिनाथ ने लौकान्तिक देवों को विदा कर नारायण नामक पुत्र पर अपनी वंश लक्ष्मी को समर्पित किया अर्थात् राज्य पालन का भार नारायण नामक पुत्र के लिये सौंपा।।9।। जब शान्ति जिनेन्द्र उस प्रकार के साम्राज्य को छोड़ने की इच्छा करने लगे तब अज्ञानी जनों ने भी यह मान लिया कि तपस्या ही प्राणियों के लिये हितकारी है लक्ष्मी नहीं।।10।।

तदनन्तर अनेक प्रकार के वाहनों से सहित चार प्रकार के देवों की बहुत भारी संपदा से वह नगर शीघ्र ही परिपूर्ण हो गया।।1।। समीपवर्ती प्रदेशों में देवों के विमानों से अत्यन्त भरा हुआ वह नगर भूमि पर स्थित होता हुआ भी स्वर्ग के मध्य में स्थित के समान हो गया था।।2।। शङ्ख और दुन्दुभियों के शब्दों से दिशाओं का अन्तराल जिस तरह शब्दायमान हो उस तरह देवों, राजाओं और नगर वासियों के समूह ने क्रम से प्रभु का अभिषेक किया।।3।।

कुश, दूर्वा, जौ और अक्षतों के द्वारा जिनकी पहले आरती की गयी थी, जिन्होंने उज्ज्वल वेश धारण किया था तथा इन्द्र जिनके आगे आगे चल रहा था ऐसे शान्ति प्रभु सभा में गये।।4।। अपनी यशोराशि के समान शुक्ल चन्दन के द्वारा लेप लगा कर उन्होंने शरच्चन्द्र की किरणों के समान दो नवीन वस्त्र धारण किये।।5।। जो मोतियों के आभूषणों से सहित थे, जिन्होंने छोटा सेहरा धारण किया था तथा जो तपोलक्ष्मी रूपी वधू के वर थे ऐसे शान्तिप्रभू कोई अनिर्वचनीय शोभा को प्राप्त हुए।।6।। वे प्रभु जब तपस्या के लिये उत्सुक हुए तब सौभाग्य भङ्ग से उत्पन्न लज्जा के कारण ही मानों साम्राज्य लक्ष्मी तिरोहित हो गयी—कहीं जा छिपी।।7।। जिनका मुख ऊपर की ओर था ऐसे शान्तिप्रभु सभा से निकल कर इच्छानुसार चरणों के द्वारा पृथिवी का स्पर्श करने के लिये ही मानों पाँच छह डग पैदल चले थे।।8।। इस प्रकार जब वे अन्तःशत्रुओं के समूह को नष्ट करने के लिये उद्यत हुए तब चराचर सहित सम्पूर्ण जगत् आनन्द से सुशोभित होने लगा।।9।। उस समय सब दिशाएं नृत्यमय हो गयी थीं, आकाश पुष्पवृष्टिमय हो गया था, सृष्टि देवमयी हो गयी थी और पृथिवी वादित्रों के शब्द से तन्मय हो गयी थी।।20।।

तदनन्तर प्रशस्त यश से युक्त शान्तिनाथ उस पालकी पर आरूढ़ हुए जो सौधर्म आदि इन्द्रों के द्वारा पीछे की ओर से कुछ ऊपर की ओर

उठायी गयी थी।।21।। जो सम्यग्दर्शन से सहित था, मोक्ष का इच्छुक था और देव समूह जिसे कौतूक से देख रहा था ऐसा चक्रायुध शान्ति जिनेन्द्र के पीछे ही घर से निकल पड़ा।।22।। देवों के द्वारा धारण की हुई पालकी से आकाश को तेजोमय करते हुए शान्ति जिनेन्द्र उस सहस्राम्र वन में पहुँचे जो देवों से सब ओर घिरा हुआ था।।23।। वहाँ इन्द्रों के द्वारा उतारे हुए शान्ति प्रभु ने नन्दीवृक्ष के नीचे बैठकर तथा ऊपर की ओर मुख कर शुद्ध बुद्धि से सिद्धों को नमस्कार किया।।24।। उन्होंने ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन जब कि चन्द्रमा भरणी नक्षत्र पर स्थित था अपराह्न समय दो दिन के उपवास का नियम लेकर निष्ठा पूर्वक दीक्षा धारण की।।25।। इन्द्र ने भ्रमर के समान काले तथा फूलों से सुवासित भगवान् के केशों को पिटारे में रख कर क्षीर समुद्र में क्षेप दिया।।26।। जिनकी आत्मा भव्यत्व भाव से प्रेरित हो रही थी ऐसे एक हजार राजाओं के साथ प्रशमभाव में तत्पर चक्रायुध ने (कर्म शत्रुओं के नष्ट करने में समर्थ) दीक्षा ग्रहण की।।27।।

जो दीक्षा के अनन्तर प्रकट हुई सात ऋद्धियों से विभूषित थे ऐसे उन शान्तिनाथ स्वामी ने सम्यक् मनःपर्यय ज्ञान प्राप्त किया। भावार्थ—उन्हें दीक्षा लेते ही सात ऋद्धियों के साथ मनः पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया।।28।। अन्य दिन प्रयोजन के ज्ञाता भगवान् ने समयानुसार आहार प्राप्ति के लिये सुन्दर भवनों से सहित मन्दिर नामक नगर में प्रवेश किया।।29।।। सुमित्र—अच्छे मित्र रूप परिवार से युक्त होने के कारण जो सुमित्र नामका धारक था तथा श्रद्धा आदि गुणों से संपन्न था ऐसे वहाँ के राजा ने उन्हें विधि पूर्वक आहार कराया।।30।। गङ्गा के जल के समान निर्मल यश के भण्डार स्वरूप उस राजा के देवों ने पञ्चाश्चर्य विस्तृत किये।।31।। सामायिक की विशुद्धि से सहित संयम के द्वारा जिनकी आत्मा अत्यन्त विशुद्ध थी ऐसे उन भगवान् ने सोलह वर्ष तक उत्कृष्ट तप तपा।।32।।

तदनन्तर सहस्राम्रवन में नन्दिवृक्ष के नीचे शुद्ध शिला पर आरूढ़ होकर उन्होंने घातिया कर्मों का क्षय करने वाले शुक्ल ध्यान को धारण किया।।33।। पश्चात् पौष शुक्ल दशमी के दिन अपराह्न काल में भरणी नक्षत्र के रहते हुए उन्होंने लोकालोक को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान प्राप्त किया।।34।। अन्तरङ्ग में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्त वीर्य से सहित वे भगवान् अनन्तज्योति और अनन्त चतुरानन इस नाम से प्रसिद्ध हुए।।35।। जो कृतकृत्य होकर भी प्रयोजन के लिए प्रवृत्त अभ्युदय की स्थिति से सहित थे—ज्ञान कल्याणक महोत्सव से युक्त थे और जो समस्तपदार्थों को हृदय में धारण करते हुए भी परिग्रह से रहित थे ऐसे वे शान्ति जिनेन्द्र अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे।।36।। उससमय वे त्रिलोकीनाथ एक होकर भी घनप्रभा, प्रभामूर्ति और आलोक इन तीन मूर्तियों से अत्यधिक सुशोभित थे। भावार्थ—उनका दर्शन करने वाले को पहले अनुभव होता था कि भगवान् के शरीर से सघन प्रभा प्रकट हो रही है, पश्चात् अनुभव होता था कि प्रभा ही उनका शरीर है और अन्त में ऐसा जान पड़ता था कि एक प्रकाश ही है इस प्रकार एक होने पर भी वे तीन शरीरों से युक्त प्रतीत होते थे।।37।।

जो चार गोपुरों से सहित था, रत्नमय तीन कोटों से युक्त था, सेवनीय वाह्य उपवनों के समूह से कामी मनुष्यों को काम का देने वाला था, भीतर कामशाल आदि से युक्त तथा मनुष्य देव और असुरों के संभोग कक्षों से सुशोभित वनों से सुन्दर था, चौकोर शोभा से युक्त होने पर भी जो सब ओर से गोल था (पक्ष में विविध शोभा से सहित होकर गोलाकार था), अठारह कोश विस्तृत होकर भी जिसमें तीनों लोक समाये हुए थे, जो त्रिलोकसार आदि सैकड़ों नामों से सहित था, जिससे उत्तम और दूसरा नहीं था, तथा जो इन्द्र के द्वारा निर्मित था ऐसा उन भगवान् का उत्कृष्ट नगर–समवसरण था।।38–41।।

उस समवसरण में गन्धकुटी रूपी भवन के मध्य में स्थित जो इन्द्र निर्मित सिंहासन था उस पर शान्ति जिनेन्द्र पूर्वाभिमुख होकर विराजमान हुए।।42।। जो एक योजन विस्तृत शाखामण्डल रूप मण्डप को धारण कर रहा था तथा मूंगाओं के गुच्छों से नम्रीभूत था ऐसा अशोक वृक्ष प्रकट हुआ।।43।। आकाश से वह पुष्पवृष्टि पड़ रही थी जो भ्रमरों के शब्दों से कामदेव को मानों यह कहती हुई डांट रही थी कि हमारे रहते तेरा पुष्प केतु पन कैसे रह सकता है?।।44।। भगवान् के ऊपर छत्रत्रय का बहाना लेकर मानों वह निर्मल रत्नत्रय प्रकट हुआ था जो मुक्ति की सीढ़ियों के समान जान पड़ता था।।45।। आकाश में दुन्दुभि शब्द कर रहा था मानों वह उच्च स्वर से इस प्रकार की घोषणा कर रहा था कि यह त्रिलोकीनाथ ही कामदेव पर विजय प्राप्त करने से सर्वोत्कृष्ट हैं।।46।। प्रभु के दोनों ओर यक्षेन्द्र और धरणेन्द्र द्वारा ढोरे गये चौंसठ सफेद चमर चाँदनी की लहरों की शोभा को धारण कर रहे थे।।47।। जिसमें भव्यजीव अपने आगे पीछे के सात भव देखते हैं वह अतिशय श्रेष्ठ अत्यधिक ज्योति सम्पन्न भामण्डल प्रकट हुआ।।48।। जो गमन काल में एक योजन विस्तृत होता है और ठहरने के स्थान में तीन धनुष अर्थात् बारह हाथ विस्तृत रहता है ऐसा धर्मचक्र भगवान के आगे उत्तम धर्म के अङ्ग के सामन सुशोभित हो रहा था।।49।। विद्यमान भगवान् को प्रदक्षिणा रूप से घेर कर पूर्व दक्षिण भाग आदि के रूप में स्थित गणधर आदिक बारह गण थे जो द्वादशाङ्ग के समान जान पड़ते थे। भावार्थ--भगवान् शान्तिनाथ गन्ध कुटी के बीच में विद्यमान थे और उन्हें घेर कर प्रदक्षिणा रूप में बारह सभाएं बनी हुई थी जिनमें गणधर आदि बैठते थे।।50।।

गुणों के आधारभूत चक्रायुध आदि मुनि, धर्मचक्र से युक्त उन शान्ति प्रभु की क्रम से उपासना करते थे।।51।। अत्यन्त विशुद्ध विकल्प

से उत्पन्न सम्यग्दर्शन रूपी आभूषणों से सुशोभित कल्प वासिनी देवियाँ अपना संकल्प सिद्ध करने के लिए उन भगवान् को नमस्कार करती थीं।।52।। जो मूर्ति धारिणी तपोलक्ष्मी के समान थीं तथा क्षमा आदि गुण ही जिनके आभूषण थे ऐसीं निर्मल अभिप्राय वाली आर्यिकाएं आर्यजनों के स्वामी श्री शान्तिनाथ भगवान् की उपासना करती थीं।।53।। तदनन्तर जो तत्त्वज्ञान रूपी ज्योति में आदर भाव से सहित थीं तथा मुक्ति की याचना कर रहीं थीं ऐसी ज्योतिष लोक की निवासिनी देवियाँ आदरपूर्वक भगवान् के समीप बैठी थीं।।54।। जिनके ललाट कुड्मलाकार हाथों के अग्रभाग रूपी पल्लवों से सुशोभित हैं अर्थात् जिन्होंने हाथ जोड़ कर ललाट से लगा रक्खे हैं ऐसी व्यन्तर देवाङ्गनाएं नमस्कार कर उन शान्ति जिनेन्द्र की सेवा कर रही थीं।।56।। विशुद्धि रूप परिणामों से जिनके मणिमय मुकुट अत्यन्त नम्रीभूत हो रहे थे ऐसे भवनवासी देव संसार की हानि के लिए उन भव्यों के स्वामी शान्ति प्रभु के निकट स्थित थे अर्थात् उनकी उपासना कर रहे थे।।57।। जिनकी अन्तःकरण की क्रिया शुद्ध थी तथा जो मोतियों के अलंकार से सुन्दर थे ऐसे व्यन्तर देव मुक्ति प्राप्त करने के लिए उन विमुक्त जीवों के स्वामी शान्ति प्रभु को नमस्कार कर रहे थे।।58।। जो अपनी देदीप्यमान प्रभारूपी माला को धारण कर रहे थे तथा जिन्हें तत्व विषयक रुचि उत्पन्न हुई थी ऐसे ज्योतिषी देवों के स्वामी भगवान् के समीप बैठे थे।।59।। यह देख कौतुक से ही मानों जिनके नेत्र निश्चल हो गये थे ऐसे सौधर्मेन्द्र आदि कल्पवासी देव नम्रीभूत होकर भगवान् के निकट बैठे थे।।60।। जो उस समय दान शील उपवास तथा पूजा आदि की क्रियाओं से प्रसिद्ध थे ऐसे नारायण आदि राजा उन्हें नमस्कार करते हुए सुशोभित हो रहे थे।।61।। उत्तम मनोवृत्ति से युक्त सिंह तथा हाथी आदि तिर्यंच शाश्वतिक वैर को छोड़कर अपने पूर्वभव का स्मरण करते हुए उन भगवान् की सेवा कर रहे थे।।62।। तदनन्तर इस प्रकार की बारह सभाओं से घिरे हुए भगवान् शान्तिनाथ से इन्द्र ने हाथ जोड़कर धर्म का स्वरूप पूछा।।63।।

तदनन्तर इन्द्र के द्वारा इस प्रकार पूछे हुए भगवान् की वह दिव्यभाषा प्रवृत्त हुयी जो सर्वभाषा रूप थी, सब का कल्याण करने वाली थी और समस्त तत्त्वों की अद्वितीय माता थी।।64।। उन्होंने कहा—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र धर्म है यह जानना चाहिए। इसके अनन्तर तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।।65।। उस सम्यग्दर्शन के निसर्ग और अधिगम—गुरुदेशना आदि सुनिश्चित हेतु हैं। उस सम्यक्त्व के सराग और वीतराग के भेद से दो भेद हैं उनमें प्रशम संवेग तथा आस्तिक्य आदि गुणों की अभिव्यक्ति होना सराग सम्यक्त्व का लक्षण है और आत्मा की विशुद्धि मात्र होना वीतराग सम्यक्त्व है।।66।।

जीव अजीव आस्रव बन्ध संवर, उत्कृष्ट निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्वार्थ विद्वज्जनों के द्वारा जानने के योग्य हैं।।67।। जीव चेतना लक्षण वाला है, अजीव अचेतना लक्षण से सहित है, कर्मों के आगमन का द्वार आस्रव कहा गया है।।68।। जीव और कर्म के प्रदेशों का परस्पर अनुप्रवेश—क्षीर नीर के समान एक क्षेत्रावगाह होना बन्ध है। आस्रव का निरोध होना संवर है।।69।। एक देश कर्मों का क्षय होना निर्जरा का लक्षण जानना चाहिए तथा समस्त कर्मों का छूट जाना मोक्ष कहलाता है।।70।।

वे जीवादिक पदार्थ, उनका स्वरूप जानने वाले मनुष्य के द्वारा नाम स्थापना द्रव्य और भाव निक्षेपों से यथायोग्य अच्छी तरह व्यवहार करने के योग्य हैं।।71।। निर्देश स्वामित्व, साधन, विधान, स्थिति और अधिकरण के द्वारा भी निरन्तर चर्चा के योग्य हैं।।72।। प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार के प्रमाण तथा नैगमादि अनेक नयों के द्वारा उनका ज्ञान करना चाहिए। प्रमाण दो प्रकार का है और मतिज्ञानादि पञ्चज्ञान रूप है।।73।। मति श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल, अनुक्रम से ये पाँच ज्ञान जानना चाहिए।।74।। आदि के दो ज्ञान परोक्ष हैं और

शेष तीन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं। जिनेन्द्र भगवान् ने मतिज्ञान की उत्पत्ति इन्द्रिय और मन की निमित्त से मानी है।।75।। श्रेष्ठ ज्ञानियों ने अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा इस प्रकार मतिज्ञान के चार भेद निर्धारित किये हैं।।76।।

इन्द्रिय और पदार्थ का सम्बन्ध होने के बाद ही जो प्रथम ग्रहण होता है वह अवग्रह कहलाता है।।77।। अवग्रह के द्वारा ग्रहीत पदार्थ में जो उसके विशेष रूप को जानने की इच्छा है वह ईहा ज्ञान है। विशेष रूप से जाने हुए पदार्थ का जो यथार्थ जानना है वह अवाय कहलाता है।।78।। अवाय के द्वारा जाने हुए पदार्थ को कालान्तर में भी न भूलने का जो कारण है वह धारणा ज्ञान है ऐसा अच्छी तरह जानना चाहिए।।79।। बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनुक्त, अनिःसृत ध्रुव तथा इनसे छह विपरीत इस प्रकार ये सब मिलकर अवग्रहादिक के बारह–बारह भेद होते हैं।।80।। अर्थ के अवग्रहादिक सभी भेद होते हैं परन्तु व्यञ्जन का एक अवग्रह ही होता है। वह व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मन से नहीं होता है।।81।। मतिज्ञान का यह विकल्प तीनसौ छत्तीस होता है जो कि इन्द्रियावग्रहादि के विस्तार से विस्तृत होता है। भावार्थ–बहु बहुविध आदि बारह प्रकार के पदार्थों के अवग्रहादि चार ज्ञान पांच इन्द्रियों और मन के निमित्त से होते हैं इसलिए 12×4×6=288 दो सौ अठासी भेद होते हैं उनमें व्यञ्जनावग्रह के 12×4=48 अड़तालिस भेद मिला देने से मतिज्ञान के तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं।।82।।

जो ज्ञान मतिपूर्वक होता है उसे श्रुतज्ञान जानना चाहिए। यह श्रुत दो अनेक तथा बारह प्रकार का होता है। इन के सिवाय यह पर्याय आदि विविध भेदों से भी सहित है। भावार्थ–श्रुत ज्ञान के मूल में अङ्ग बाह्य और अङ्ग प्रविष्ट के भेद से दो भेद हैं। पश्चात् अङ्ग वाह्य के अनेक भेद हैं और अङ्गप्रविष्ट के आचाराङ्ग आदि बारह भेद हैं। श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के तारतम्य से इसके पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास आदि बीस भेद भी होते हैं।।83।।

अब अवधिज्ञान का वर्णन किया जाता है। विद्वज्जनों के द्वारा अवधि ज्ञान क्षयोपशमनिमित्तक और भवप्रत्यय के भेद से दो प्रकार का कहा जाता है।।84।। भवप्रत्ययज—भवरूप कारण से होने वाला अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है तथा क्षयोपशमज—अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होने वाला अवधिज्ञान छह प्रकार का है और वह मनुष्य तथा तिर्यंचों के होता है।।85।। अनुगामी, अननुगामी, अवस्थित, अनवस्थित, वर्धमान और हीयमान इस तरह क्षयोपशमज अवधिज्ञान छह प्रकार का है।।86।।

मन पर्ययज्ञान दो प्रकार का है पहला ऋजुमति और दूसरा विपुल—मति।।87।। ऋजुमतिज्ञान जघन्य रूप से काल की अपेक्षा अपने तथा दूसरों के तीन भवों को निरन्तर जानता है और उत्कृष्ट रूप से सात आठ भवों को जानता है।।88।। क्षेत्र की अपेक्षा जघन्य रूप से दो तीन कोश और उत्कृष्ट रूप से सात आठ योजन की बात को जानता है।।89।। विपुलमति मन:पर्ययज्ञान काल की अपेक्षा जघन्य रूप से सात आठ भवों को और उत्कृष्ट रूप से असंख्यात भवों को गति आगति आदि के द्वारा जानता है।।90।। क्षेत्र की अपेक्षा जघन्यरूप से सात आठ योजन और उत्कृष्ट रूप से मानुषोत्तर पर्वत तक की बात को देखता है।।91।। विशुद्धि और अप्रतिपात की अपेक्षा ऋजुमति और विपुलमति में विशेषता जानी जाती है तथा विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषयभूत वस्तु की अपेक्षा अवधि और मन:पर्ययज्ञान में विशेषता होती है।।92।।

विद्वज्जन मति और श्रुतज्ञान का विषय—निबन्ध समस्त पर्यायों से रहित समस्त द्रव्यों में कहते हैं। अर्थात् मति श्रुतज्ञान जानते तो सब द्रव्यों को हैं परन्तु उनकी सब पर्यायों को नहीं जानते।।93।।

अवधिज्ञान का विषय निबन्ध रूपी द्रव्यों में कहा गया है। अवधिज्ञान का विषय प्रतिबन्ध से रहित होता है अर्थात् वह अपने विषय

क्षेत्र में आगत पदार्थों को भित्ति आदि का आवरण रहते हुए भी जानता है। मन:पर्ययज्ञान का विषय अवधिज्ञान के विषय से अनन्तवें भाग सूक्ष्म विषय में होता है।।94।। केवलज्ञान का विषय निबन्ध तीन काल सम्बन्धी समस्त द्रव्यों और उनकी समस्त पर्यायों में होता है। वह केवल ज्ञान क्षायिक तथा सर्वतोमुख—सभी ओर के विषयों को ग्रहण करने वाला है।।95।। आदि के तीन ज्ञान विपर्यय से सहित होते हैं अर्थात् मिथ्यारूप भी होते हैं क्योंकि उनसे पदार्थों की उपलब्धि स्वेच्छानुसार सामान्य रूप से होती है।।96।।

नैगम संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द समभिरूढ और एवंभूत ये सात नय हैं।।97।। अनेकान्तात्मक—परस्पर विरोधी अनेक धर्मों से सहित वस्तु में विरोध के बिना हेतु की विवक्षा से साध्य की यथार्थता को प्राप्त कराने में समर्थ प्रयोग नय कहलाता है।।98।। वह नय दो प्रकारका होता है—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। पहले कहे हुए नैगम आदि भेद इन्हीं दो नयों के भेद हैं। भावार्थ—नैगम, संग्रह और व्यवहार द्रव्यार्थिक नय के भेद हैं और शेष चार पर्यायार्थिक नय के भेद हैं।।99।। अनिष्पन्न पदार्थ के संकल्प मात्र को ग्रहण करने वाला नय नैगम नय है जैसे कि लकड़ी आदि लाने के लिए खड़े हुए मनुष्य का 'मैं अन्न पकाता हूँ' ऐसा कहना। यहाँ अन्न का पाक—यद्यपि अनिष्पन्न है तो भी उसका संकल्प होने से 'पकाता हूँ' ऐसा कहना सत्य है।।100।। विविध भेदों से सहित पर्यायों को एकत्व प्राप्त कर जो अपनी जाति का विरोध न करता हुआ समस्त पदार्थों का ग्रहणआदि करता है वह नय के ज्ञाता पुरुषों के द्वारा संग्रह नय कहा जाता है जैसे सद् द्रव्य, घट आदि लोंक में व्यवस्थित हैं भावार्थ—जो नय पदार्थों में भेद उत्पन्न करने वाली विशेषता को गौण कर सामान्य अंश को ग्रहण करता है वह संग्रह नय कहलाता है। जैसे सत्। यहाँ सत् के भेद जो द्रव्य, गुण और पर्याय हैं उन्हें गौण कर मात्र सत् रूप सामान्य अंश को ग्रहण किया गया। इसी प्रकार द्रव्य के भेद

जो जीव पुद्गल धर्म आदि हैं उन्हें गौण कर मात्र उत्पाद व्यय ध्रौव्य लक्षण से युक्त सामान्य अंश को ग्रहण किया गया। इसी प्रकार घट के भेद जो मिट्टी, ताँबा, पीतल आदि से निर्मित घट हैं उन्हें गौण कर मात्र कम्बुग्रीवादिमान् सामान्य अंश को ग्रहण किया गया।।101–102।।

संग्रहनय के द्वारा गृहीत वस्तुओं में क्रम से विधिपूर्वक जो भेद किया जाता है वह व्यवहारनय कहा गया है। जैसे 'सत्' इस प्रकार कहे हुए सामान्य अंश से उत्तरोत्तर विशेषों को ग्रहण करने वाला नय व्यवहार नय है। यह नय वस्तु में तब तक भेद करता जाता है जब तक कि वह वस्तु विभाग रहित न हो जावे। भावार्थ–संग्रय नय ने 'सत्' इस सामान्य अंश को ग्रहण किया था तो व्यवहार नय उसके द्रव्य, गुण, पर्याय इन भेदों को ग्रहण करेगा। संग्रह नय से यदि 'द्रव्य' इस सामान्य अंश को ग्रहण किया तो व्यवहार नय उसके जीव पुद्गल आदि विशेष भेदों को ग्रहण करेगा। तात्पर्य यह है कि संग्रह नय विविध भेदों में बिखरे हुए पदार्थों में एकत्व स्थापित करता है और व्यवहार नय एकत्व को प्राप्त हुए पदार्थों में विविध भेदों द्वारा नाना रूपता स्थापित करता है।।103–104।।

जो नय, नष्ट हो जाने से अतीत की ओर अनुत्पन्न होने के कारण अनागत पर्याय को छोड़कर मात्र वर्तमान पर्याय को ग्रहण करता है वह ऋजुसूत्रनय है।।105।। जो नय अन्य पदार्थों का अन्य पदार्थों के साथ सम्बन्ध संगत न होने के कारण लिङ्ग संख्या आदि के दोषों को स्वीकृत नहीं करता है वह शब्दनय कहलाता है। भावार्थ–लिङ्ग संख्या तथा साधन आदि के व्यभिचार की निवृत्ति करने वांला नय शब्द नय कहलाता है। जैसे 'पुष्प, तारका और नक्षत्र'। ये भिन्न–भिन्न लिङ्ग के शब्द हैं उनका मिलाकर प्रयोग करना लिङ्ग व्यभिचार है। जलं, आपः, वर्षाः ऋतु, आम्रा वनम्, वरुणा नगरम्, इन एक वचनान्त और बहुवचनान्त शब्दों का विशेषण विशेष्य रूप से प्रयोग करना संख्या व्यभिचार है।

'सेना पर्वत मधि—वसति'—सेना पर्वत पर निवास करती है—यहाँ अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति न होकर द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है इसलिए यह साधन व्यभिचार है। 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि यातस्ते पिता'—'आओ तुम समझते हो कि मैं रथ से जाऊँगा, परन्तु नहीं जाओगे, तुम्हारे पिता गये'। यहाँ 'मन्यसे' के स्थान में 'मन्ये' और 'यास्यामि' के स्थान में 'यास्यति' क्रिया का प्रयोग होने से पुरुष व्यभिचार है। 'विश्वदृश्वास्य पुत्रो जनिता'—इसका विंश्वदृश्वा— जिसने विश्व को देख लिया है ऐसा पुत्र होगा। यहाँ 'विश्वदृश्वा' कर्ताका 'जनिता' इस भविष्यत्कालीन क्रिया के साथ प्रयोग किया गया है अतः कालव्यभिचार है। 'संतिष्ठते प्रतिष्ठते, विरमति, उपरमति',। यहाँ सम् और प्र उपसर्ग के कारण स्था धातुका आत्मनेपद प्रयोग और वि तथा उप उपसर्ग के कारण रम् धातु का परस्मैपद प्रयोग हुआ है—यह उपग्रहव्यभिचार है। यद्यपि व्यवहार में ऐसे प्रयोग होते हैं यथापि शब्दनय इस प्रकार के व्यवहार को स्वीकृत नहीं करता है। क्योंकि पर्यायार्थिक नय की दृष्टि में अन्य अर्थ के साथ सम्बन्ध नहीं बन सकता।।106।।

जो नाना अर्थों का उल्लङ्घन कर सदा मुख्य रूप से अच्छी तरह एक सुनिश्चित अर्थ को ग्रहण करता है वह समभिरूढनय है। अथवा एक शब्द के जो नाना अर्थ प्रसिद्ध हैं उनमें से जो मुख्य रूप से एक अर्थ से अच्छी तरह अभिरूढ होता है वह समभिरूढनय है। जैसे 'गो' यह शब्द वचन आदि अर्थों में प्रसिद्ध है परन्तु विशेषरूप से पशु अर्थ में रूढ है। इसी प्रकार इन्द्र आदि शब्द आत्मा अर्थ में रूढ हैं।।107–109।।

जो वस्तु जिस काल में जिस रूप से परिणत हो रही है उस काल में उसका उसी रूप से निश्चय करना एवंभूतनय है जैसे शक्ति रूप परिणत होने के कारण इन्द्र को शक्र कहना, अन्य प्रकार से नहीं। भावार्थ—जिस शब्द का जो वाच्य है उस रूप क्रिया के परिणमन के समय ही उस शब्द का प्रयोग करना उचित है अन्य समय नहीं। जैसे लोकोत्तर शक्तिरूप परिणमन करते समय ही इन्द्र को शक्र कहना और

लोकोत्तर ऐश्वर्य से संपन्न होते समय ही इन्द्र कहना अन्य समय नहीं।॥10॥ ये नैगमादि नय अन्तिम भेद से लेकर पूर्व पूर्व भेदों में विरुद्ध तथा विस्तृत विषय को ग्रहण करने वाले हैं और प्रथम भेद से लेकर आगे–आगे अनुकूल तथा अल्प विषय को ग्रहण करने वाले हैं।॥11॥ चूँकि वस्तु अनन्त शक्त्यात्मक है और प्रत्येक शक्ति की अपेक्षा विविध विकल्प उत्पन्न होते हैं इसलिये ये नैगमादि नय बहुत विकल्पों–अनेक अवान्तर भेदों से सहित हैं तथा गौण और मुख्य से उनका प्रयोग होता है।॥12॥

तद्भाव अतद्भाव, द्वैतभाव, अद्वैतभाव, तथा विशेषण और विशेष्यभाव से उत्पन्न होने वाले नाना भेदों से वस्तु तत्व की प्रतीति होती है। भावार्थ–यतश्च द्रव्य सब पर्यायों में अन्वयरूप से विद्यमान रहता है इसलिये द्रव्य दृष्टि से वस्तु तद्भाव से सहित है परन्तु एक पर्याय अन्य पर्याय से भिन्न है अतः पर्याय दृष्टि से वस्तु अतद्भाव से सहित है। सामान्य–द्रव्य की अपेक्षा वस्तु अद्वैत–एक रूप है और विशेष–पर्याय की अपेक्षा द्वैत रूप है अथवा गुण और गुणी में प्रदेश भेद न होने से वस्तु अद्वैतरूप है और संज्ञा, संख्या तथा लक्षण आदि में भेद होने से द्वैत रूप है। 'आत्मा ज्ञानवान्' है यहाँ ज्ञानवान विशेषण है और 'आत्मा' विशेष्य है परन्तु ज्ञान और आत्मा के प्रदेश जुदे–जुदे नहीं हैं, इसलिए ज्ञान ही आत्मा है और आत्मा ही ज्ञान है इस प्रकार आत्मा विशेषण विशेष्यभाव से रहित है। वस्तु के भीतर इन उपर्युक्त भेदों की प्रतीति होती है इसलिये वस्तु अनन्त भेदरूप है।॥13॥ समस्त पदार्थ निज और पर के विकल्प से रहित साधारण–सामान्य लक्षण से युक्त हैं। इन सब पदार्थों के परिज्ञान के लिये स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यादस्ति नास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्ति–अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य और स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य इस सप्तभङ्गों को अच्छी तरह समझना चाहिये।॥14॥

सिद्ध और संसारी इस प्रकार जीव दो भेदों से सहित हैं। उनमें सिद्ध एक प्रकार के और संसारी अनेक प्रकार के जानना चाहिये।॥15॥

स्वरूप, पिण्ड, प्रवृत्ति, अप्रवृत्ति, सामान्य, विशेष, सामर्थ्य, असामर्थ्य, प्रकाशन और अप्रकाशन ये जीव के क्रम से दश अन्वय–द्रव्य से सम्बन्ध रखने वाले गुण हैं और असादृश्य को मिलाने से ग्यारह व्यतिरेकी गुण क्रम से अध्यात्म के ज्ञाता विद्वानों के द्वारा जानने योग्य हैं।॥16–118॥

अब जीव के औपशमिक, क्षायिक, क्षयोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक भाव जानने के योग्य हैं।॥119॥ औपशमिक भाव दो भेद वाला, क्षायिकभाव नौभेद वाला, क्षायोपशमिक भाव अंठारह भेद वाला, औदयिकभाव इक्कीस भेद वाला और पारिणामिकभाव तीन भेद वाला क्रम से जानना चाहिए।॥120॥ सम्यक्त्व और चारित्र ये दो औपशमिकभाव के भेद हैं।॥121॥ चार ज्ञान–मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, तीन अज्ञान–कुमति कुश्रुत कुअवधि तीन दर्शन–चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, पञ्चलब्धियाँ –दान लाभ भोग उपभोग, वीर्य, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र, और संयमासंयम इस प्रकार क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद हैं।॥122–123॥ चार गतियाँ–नरक तिर्यंच मनुष्य देव–असिद्धत्व, तीन लिङ्ग–स्त्री पुरुष नपुंसक वेद, असंयत, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, चार कषाय–क्रोध मान माया लोभ, औरछह लेश्याएं–कृष्ण नील कापोत पीत पद्म और शुक्ल इस प्रकार औदयिकभाव के इक्कीस भेद हैं। यह भाव कर्मोदय के आश्रय से होता है।॥124–125॥ जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व के भेद से पारिणामिक भाव तीन प्रकार का है। इनके सिवाय छत्तीस भेद वाला एक सांनिपातिक नामका छठवां भाव भी होता है।॥126॥

अजीव के पांच भेद कहे गये हैं–पुद्गल, आकाश, धर्म, अधर्म, और काल। इनमें से काल को छोड़कर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये पांच अस्तिकाय कहलाते हैं॥ 127 जीव को आदि लेकर काल पर्यन्त छह द्रव्य होते हैं। जो गुण और पर्याय से युक्त हो वह द्रव्य है इस प्रकार जैनाचार्य द्रव्य का लक्षण कहते हैं।॥128॥ ये सभी द्रव्य

नित्य अवस्थित और अरूपी हैं परन्तु पुद्गल द्रव्य रूपी माने गये हैं। धर्म अधर्म और आकाश ये तीन द्रव्य एक एक हैं। जीव और पुद्गल को छोड़कर शेष चार द्रव्य क्रिया–रहित हैं।।29।। धर्म अधर्म और एक जीवद्रव्य के असंख्यात प्रदेश हैं, आकाश के अनन्त प्रदेश हैं, पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं परन्तु परमाणु प्रदेश रहित है। वह परमाणु अपने वर्णादिगुणों के द्वारा ग्रहण करने योग्य है अर्थात् रूप रस गन्ध और स्पर्श से सहित है। इन सब द्रव्यों का अवगाह लोकाकाश में है यह निश्चित है।।30–131।। आकाश स्वप्रतिष्ठित है तथा सब ओर से अनन्त है। जिसमें धर्मादिक द्रव्य देखे जाते हैं–पाये जाते हैं वह लोक कहलाता है।।32।। धर्म और अधर्म द्रव्य का स्पष्ट अवगाहन समस्त लोक में है। पुद्गलों का अवगाहन एक आदि प्रदेशों में विभाग करने के योग्य है। जीवों का अवगाहन भी लोक के असंख्यातवें भाग को आदि लेकर समस्त लोक में जानना चाहिए। दीपक के समान प्रदेशों के संकोच और विस्तार के कारण जीवों का अवगाहन लोक के असंख्येयभागादिक में होता है।।33।–134।।

अब पुद्गल का लक्षण कहते हैं जो स्पर्श रस गन्ध और वर्ण से सहित हों वे पुद्गल हैं। शब्द, बन्ध, संस्थान, सौक्ष्म्य, स्थौल्य, तम, छाया और आतप और उद्योत से सहित पुद्गल होते हैं अर्थात् ये सब पुद्गल द्रव्य की पर्याय हैं। अणु और स्कन्ध ये पुद्गल द्रव्य के भेद हैं। स्कन्ध की उत्पत्ति भेद, संघात तथा भेद संघात से होती है परन्तु अणु की उत्पत्ति मात्र भेद से होती है।।35–136।। पुद्गलों का बन्ध स्निग्ध और रूक्षता के कारण कहा जाता है। जघन्य गुणवाले परमाणुओं के साथ बन्ध नहीं होता है किन्तु दो अधिक गुण वालों के साथ होता है।।37।। बन्ध होने पर अधिक गुण वाले परमाणु हीन गुण वाले परमाणुओं को अपने रूप परिणमा लेते हैं। काल द्रव्य वर्तना लक्षण

वाला है तथा अनन्त समय से युक्त माना गया है।॥38॥ उत्पाद व्यय और ध्रौव्य से जो युक्त हो वह सत् कहा गया है। द्रव्य का अपने रूप से नष्ट नहीं होना नित्य कहलाता है। विवक्षित और अविवक्षित के आश्रय से द्रव्य नित्यानित्यात्मक होता है।॥39॥

इस प्रकार जब शान्ति जिनेन्द्र ने द्रव्यों के लक्षण के साथ–साथ छहों द्रव्यों के स्वरूप का क्रम से कथन किया तब वह समवसरण सभा अत्यन्त श्रद्धा से युक्त हो गयी। प्रबोध प्राप्त करने में दक्ष हृदय से उसका मुख कमल खिल गया और वह प्रातः काल के सूर्य की किरणों के पड़ने से खिलते हुए कमल वन की शोभा को धारण करने लगी।॥40॥ इस प्रकार द्रव्यों का निरूपण कर जो भव्यजनों के कार्य–हित साधना में तत्पर थे, शेष तत्वों का निरूपण करने के लिए उद्यत थे, तथा समीचीन संपदाओं–अष्ट प्रातिहार्य रूप श्रेष्ठ संपदाओं के अद्वितीय स्थान थे ऐसे उन शान्ति प्रभु की कोई सदस्य स्तुति कर रहे थे, और कोई हर्ष से झुकते तथा ऊँचे उठते हुए मुकुटों के अग्रभाग पर हस्त कमल को रखकर पद–पद पर प्रणाम कर रहे थे।॥41॥

इस प्रकार असग महाकवि द्वारा विरचित शान्तिपुराण में भगवान् के केवलज्ञान की उत्पत्ति का वर्णन करने वाला पन्द्रहवां सर्ग समाप्त हुआ।॥5॥

षोडशः सर्गः

अथानन्तर आस्रव से रहित तथा वचनों के स्वामी श्री शान्तिजिनेन्द्र भव्यजीवों के पुण्यास्रव के लिये इस प्रकार आस्रव तत्व का क्रम से कथन करने के लिये उद्यत हुये।।1।। जो काय वचन और मन की क्रिया है वह योग कहलाता है। वह योग ही आस्रव है। शुभयोग पुण्य कर्म का और अशुभ योग पाप कर्म का आस्रव कहा गया है।।2।। आस्रव के स्वामी जीव सकषाय और अकषाय के भेद से दो प्रकार के हैं। उपर्युक्त योग सकषाय जीवों के सांपरायिक आस्रव और अकषाय जीवों के ईर्यापथ आस्रव के लिये होता है।।3।। पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय, पाँच अव्रत और पच्चीस क्रियाएं ये सांपरायिक आस्रव के भेद हैं।।4।। विद्वज्जन प्राणियों की स्पर्शन आदि को पाँच इन्द्रिय, क्रोधादिक को चार कषाय और हिंसादिक को पाँच अव्रत कहते हैं।।5।।

गुरु, प्रतिमा तथा आगम आदि की पूजा स्तुति आदि लक्षण से सम्यक्त्व को बढ़ाने वाली जो क्रिया है वह सम्यक्त्व क्रिया है।।6।। मिथ्यात्व के कारण अन्य दृष्टियों की प्रशंसादि रूप जो जीव की प्रवृत्ति है वह परमार्थ में मिथ्यात्व क्रिया कही जाती है।।7।। शरीर आदि के द्वारा अपनी तथा अन्य पुरुषों की जो गमन आदि में प्रवृत्ति होती है उसे उत्कृष्ट प्रयोग के ज्ञाता पुरुषों ने प्रयोग क्रिया कहा है।।8।। संयमके आधार भूत साधु का असंयम की ओर सन्मुख होना समादान क्रिया कही जाती है।।9।। ईर्यापथ के कारण जो क्रिया होती वह ईर्यापथ नामकी क्रिया है। तथा क्रोध के आवेश से जो क्रिया उत्पन्न होती है वह प्रादोषिकी क्रिया कहलाती है।।10।। अत्यन्त दुष्ट मनुष्य का हिंसादि के प्रति जो उद्यम है वह कायिकी क्रिया है तथा हिंसा के उपकरण आदि को ग्रहण

करना आधार क्रिया कहलाती है।॥1॥ दुःखोत्पत्ति के कारण जो परिताप होता है वह पारितापिकी क्रिया है तथा हिंसात्मक जो क्रिया है उसे प्राणातिपातिकी क्रिया जानना चाहिए।॥2॥ राग से आर्द्र अभिप्राय वाले प्रमादी साधु का सुन्दर रूप को देखने का जो अभिप्राय है वह दर्शन क्रिया है।॥3॥ स्वयं अपूर्व अधिकरण के उत्पन्न करने से—विषयोपभोग के नये नये साधन जुटाने से प्रात्ययिकी क्रिया होती है ऐसा विद्वज्जनों को जानना चाहिये।॥4॥ प्रमाद के वशीभूत होकर किसी देखने योग्य वस्तु का बार—बार चिन्तन करना भोगिनी क्रिया प्रसिद्ध है।॥5॥ स्त्री पुरुषों के आवागमन के स्थान में भीतरी मलों का छोड़ना समन्तादुपतापिनी (समन्तानुपातिनी) क्रिया है।॥6॥ बिनामार्जन की हुयी तथा बिना देखी हुई भूमि में मात्र शरीरादिक का रखना—उठना बैठना अनाभोग क्रिया मानी गयी है।॥7॥ दूसरे के द्वारा करने योग्य कार्य को जो प्रमाद वश स्वयं करता है उसका ऐसा करना प्रयत्नशील पुरुषों के द्वारा स्वहस्त क्रिया कही जाती है।॥8॥ पाप को ग्रहण करने वाली प्रवृत्तियों में विशेषरूप से सम्मति देना निसर्ग क्रिया है ऐसा मुक्ति में लीनहृदय वाले पुरुषों ने कहा है।॥9॥ दूसरे के द्वारा आचारित सावद्य कार्यों का प्रकट करना विदारण क्रिया है ऐसा दयालु पुरुषों को जानना चाहिए।।20॥ आवश्यक आदि के विषय में मोह वश यथोक्त मार्ग को करने में असमर्थ मनुष्य का अन्यथा व्याख्यान करना आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है।।21॥ शठता आदि के कारण आगम प्रतिपादित क्रिया के करने में अनादर भाव का होना आकांक्षारूपी मल से रहित अभिप्राय वाले पुरुषों के द्वारा अनाकांक्षा क्रिया कही गयी है।।22॥ दूसरे के द्वारा की जाने वाली छेदन भेदनादि क्रियाओं में संयमी मनुष्य का हर्षित होना प्रारम्भ क्रिया है।।23॥ परिग्रह रूपी पिशाच में आसक्ति रखने वाले पुरुष का परिग्रह का नाश न होने के लिये जो उद्यम है उसे परिग्रह के त्यागी पुरुषों ने पारिग्राहिकी क्रिया कहा है।।24॥ सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान आदि की

क्रियाओं में सत् पुरुष की जो मायारूप प्रवृत्ति है उसे माया रूपी रोग से रहित पुरुषों को माया क्रिया जानना चाहिये।।25।। मिथ्यात्व के कारणों से युक्त अन्य पुरुष को जो 'तुम अच्छा कर रहे हो' इस प्रकार के प्रशंसात्मक शब्दों द्वारा दृढ करता हैउसका वह कार्य मिथ्यादर्शन क्रिया है।।26।। निरन्तर संयम का घात करने वाले कर्मों के उदय से सत्पुरुष का जो त्याग रूप परिणाम नहीं होता है वह विद्वज्जनों के द्वारा अप्रत्याख्यान क्रिया कही गयी है।।27।।

तीव्रभाव, मध्यमभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरण तथा वीर्य से उस आस्रव में विशेषता जानी जाती है।।28।। आस्रव का जो अधिकरण है उसके सत्पुरुषों ने जीवाधिकरण और अजीवाधिकरण इस प्रकार दो भेद कहे हैं। उनमें विद्वज्जन जीवाधिकरण के एक सौ आठ भेद हैं ऐसा कहते हैं।।29।। हिंसादि के विषय में अभिप्राय का होना संरम्भ है तथा साधनों का अच्छी तरह अभ्यास करना समारम्भ है, ऐसा विद्वज्जनों के द्वारा कहा जाता है। कार्य का प्रारंभ कर देना आरम्भ है, इस प्रकार ये तीन माने गये हैं। काय वचन और मन का जो संचार है वह तीन प्रकार का योग है।।30–31।। स्वतन्त्रता की प्रतिपत्ति जिसका प्रयोजन है वह ज्ञानीजनों के द्वारा कृत कहा जाता है दूसरे से कराना जिसका प्रयोजन है वह कारित कहलाता है। और प्रेरक मनका जो परिणाम है वह अनुमत शब्द से दिखायाजाता है। इस प्रकार यह कृत–कारित और अनुमोदना का त्रिक है।।32–33।। क्रोध मान माया और लोभ ये चार कषाय हैं इन्हें संरम्भादिक त्रिवर्ग के द्वारा क्रम से गुणित करना चाहिये। अर्थात् संरम्भादिक तीनका तीनयोगों से गुणा करने से नौ भेद होते हैं। नौ का कृत कारित और अनुमोदना में गुणा करने से सत्ताईस होते हैं और सत्ताईस का क्रोधादि चार कषायों में गुणा करने से जीवाधिकरण के एक सौ आठ भेद होते हैं।।34।।

निर्वर्तना, निक्षेप, संयोग और निसर्ग यह विद्वज्जनों के द्वारा अजीवाधिकारण आस्रव कहा गया है।35।। इनमें यथाक्रम से निर्वर्तना के दो, निक्षेप के चार, संयोग के दो और निसर्ग के तीन भेद कहे हैं। इस प्रकार अजीवाधिकरण आस्रव के ज्ञाता पुरुषों ने अजीवाधिकरण के एकत्रित ग्यारह भेद कहे हैं।36।। मूलगुण और उत्तर गुणेंके भेद से निर्वर्तना दो प्रकार की मानी गयी है। सचेतन को मूल गुण और काष्ठादिक को उत्तर गुण जानना चाहिए।37।। अप्रत्यवेक्षित निक्षेप, दुष्प्रमृष्ट निक्षेप, सहसा निक्षेप और अनाभोग निक्षेप, इस प्रकार निंक्षेप चार प्रकार का होता है।38।। भक्तपान–संयोग और उपकरण संयोग के भेद से संयोग दो प्रकार का माना गया है तथा योगों के भेद से निसर्ग तीन प्रकार का कहा जाता है।39।।

प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात ये ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्म के आस्रव के हेतु हैं।40।। मोक्ष मार्ग का व्याख्यान होने पर कोई मनुष्य कहता तो कुछ नहीं है परन्तु अन्तरङ्ग में उसके दुष्ट भाव होता है। उसका वह दुष्ट भाव प्रदोष कहा गया है।41।। किसी कारण से नहीं है, नहीं जानता हूँ इत्यादि शब्दों द्वारा किसी का देने योग्य विषय में ज्ञान का जो छिपाना है वह निहुति कहलाती है।42।। योग्य पुरुष के लिए भी जो अभ्यास किया हुआ भी ज्ञान नहीं दिया जाता है उसे कार्य से सुशोभित आचार्य मात्सर्य कहते हैं।43।। ज्ञान की वृत्ति का विच्छेद करना, प्रज्ञा के मद से रहित ज्ञानी जनों के द्वारा अन्तराय कहा जाता है।44।। ज्ञान के विषय में जो अनादर का भाव होता है उसे विद्वज्जन आसादना कहते हैं और ज्ञान को नष्ट करने का जो उद्यम है उसे उपघात कहते हैं।45।।

दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये असातावेदनीय के आस्रव के हेतु हैं।46।। ये दुःख शोकादि निज, पर और दोनों के

लिए प्रयुक्त होते हैं ऐसा बुद्धिमान जनों को जानना चाहिए। मानसिक व्यथा को दुःख कहा गया है। अन्य के विरह से जो दुःख होता है उसे शोक कहते हैं।।47।। पश्चात्ताप को ताप कहते हैं। जिसमें सन्ताप के कारण अश्रुओं की संतति चालू रहती है तथा जो प्रलाप आदि से सहित होता है वह आक्रन्दन कहलाता है।।48।। आयु, इन्द्रिय, बल तथा श्वासोच्छवास का वियोग करना वध है। और ऐसा विलाप करना जो दूसरों को दया आदि का कारण हो परिदेवन कहलाता है।।49।।

भूतव्रत्यनुकम्पा, दान, शौच, उत्तम क्षमा, और सराग संयमादि का योग इत्यादिक सातावेदनीय के आस्रव के हेतु हैं ऐसा ज्ञानीजनों ने कहा है। प्राणियों तथा इन्द्रियों में अशुभोपयोग का जो त्याग है वह संयम माना गया है।।50–51।। जो संसार के कारणों का त्याग करने के प्रति निरन्तर तत्पर रहता है परन्तु जिसकी सराग परिणति क्षीण नहीं हुयी है वह सत्पुरुषों के द्वारा सराग कहा जाता है।।52।।

केवली, श्रुत, सङ्घ, धर्म और देवों का अवर्णवाद–मिथ्या दोष कथन दर्शन मोहनीय कर्म के आस्रव का हेतु है।।53।। कषाय के उदय से प्राणियों का जो तीव्र परिणाम होता है वह चारित्र मोह के आस्रव का हेतु है यह जानना चाहिए।।54।। निज और पर को कषाय उत्पन्न करना, साधुओं को दूषण लगाना, संक्लिष्ट लिङ्ग तथा शीलादि को धारण करना यह सब कषाय वेदनीय के आस्रव का हेतु है ऐसा संपूर्ण रूप से समस्त कषायरूपी शत्रुओं को उन्मूलित करने वाले आचार्यों के द्वारा कहा जाता है।।55–56।। धर्म की हँसी उड़ाना, दीन जनों का उपहास करना, बहु बकवास और बहुत हास्य आदि करना, इन सब को हास्य वेदनीय कर्म का कारण जानना चाहिये।।57।। नाना क्रीड़ाओं में तत्परता, तथा व्रत और शीलों में अरुचि होना, इत्यादि रतिवेदनीय का आस्रव है॥58॥

दूसरों को अरति उत्पन्न करना, दूसरों की अरति को अच्छा समझना—उसकी प्रशंसा करना, तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य अरतिवेदनीय के कारण है।।59।। अपने शोक में चुप रहना तथा दूसरों के शोक में उछल कूद करना हर्ष मनाना इसे शोक रहित श्रीगुरु शोकवेदनीय का आस्रव कहते हैं।।60।। अपने आप के अभय रहने का संकल्प करना और दूसरों को भय उत्पन्न करने वाले कार्यों का करना भयवेदनीय के कारण है ऐसा भय रहित मुनियों ने कहा है।।61।। कुलाचार की क्रियाओं में ग्लानि तथा उनकी निन्दा करने को जुगुप्सा वेदनीय के आस्रव का कारण कहते हैं॥62॥ अत्यधिक धोखा देने में तत्परता, मिथ्या भाषण की कुशलता और बहुत भारी रागादि का होना यह स्त्रीवेद का कारण है।।63।। अल्प क्रोध होना, अहंकार का न होना, आगम के अनुसार कथन करना, तथा स्वस्त्री में संतोष रखना पुंवेद के आस्रव का कारण है।।64।। कषाय की अधिकता, परस्त्री संगम, गुह्य अंङ्गों का छेदना और अधिक मायाचार नपुंसकवेद का कारण है।।65।।

बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह आदि नरकायु का तथा मायाचार तिर्यञ्च आयु का कारण कहा जाता है।।66।। निःशीलव्रतपना, स्वभाव से कोमल होना और विनय की अधिकता यह सब मनुष्यायु का कारण है।।67।। पहले कहा हुआ सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा, बाल तप और सम्यक्त्व ये सब ज्ञानी पुरुषों के द्वारा देवायु के आस्रव कहे गये हैं। विशेषता यह है कि सम्यक्त्व कल्पवासी देवों को छोड़ कर अन्य देवों का कारण नहीं है।।68–69।।

योगों की वक्रता और विसंवाद अशुभ नाम कर्म का कारण है तथा इनसे विपरीत भाव शुभनाम कर्म का कारण है।।70।। तदनन्तर दर्शन विशुद्धि आदि सोलह उत्तम भावनाएं भव्यजीवों को सदा तीर्थंकर नाम कर्म का कारण जानना चाहिये।।71।।

अपनी प्रशंसा करना, पर की निन्दा करना, दूसरे के विद्यमान गुणों का आच्छादन करना और अपने अविद्यमान गुणों का कथन करना नीचगोत्र कर्म का हेतु है।।72।। पूर्वोक्त परिणति से विपरीत परिणति, उच्च गोत्र का हेतु है। तथा दान आदि में विघ्न करना अन्तराय कर्म का आस्रव है।।73।। विद्वज्जन व्रत आदि सत्कार्यों को शुभ भाव कहते हैं। ये शुभभाव प्राणियों के पुण्यास्रव के कारण होते हैं।।74।।

मिथ्यात्व, अविरति, योग, प्रमाद और कषाय ये बन्ध के हेतु जानने योग्य हैं। इनमें मिथ्यात्व का कथन किया जाता है।।75।। क्रियावादियों के एक सौ अस्सी, अक्रियावादियों के चौरासी, अज्ञानियों के सड़सठ, वैनयिकों के बत्तीस तथा सब के एकत्र मिलाकर तीन सौ त्रेसठ प्रकार का मिथ्यात्व है।।76–77।।

प्राणी और इन्द्रिय के विकल्प से अविरति के बारह भेद हैं। पाँच इन्द्रियों और मन को मिलाकर छह इन्द्रियाँ होती हैं तथा पाँच स्थावर और एक त्रस के भेद से जीव भी छह प्रकार के हैं।।78।। मन वचन काय के भेद से योग तीन प्रकार का जानना चाहिये तथा शुद्धयष्टक आदि के भेद से प्रमाद बहुत प्रकार का माना गया है।।78–79।। क्रोध, मान, माया और लोभ इस प्रकार से चार कषाय कही गयी हैं। ये चारों कषाय अनन्तानुबन्धी आदि के भेद से चार चार प्रकार की होती हैं।।80।। जो अनन्तभवों तक अपना अनुबन्ध–संस्कार रखती हैं अथवा अनन्तभवों को प्राप्त कराती हैं वे अनन्तानुबन्धी अथवा अनन्तसंयोजन नामक कषाय हैं।।81।। अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन नामक कषाय भी आत्महित के इच्छुक मनुष्यों के द्वारा जानने योग्य हैं।।82।। वे अनन्तानुबन्धी आदि चार कषायें क्रम से जीवों के सम्यक्त्व, देश संयम, संयम और यथाख्यातचारित्र रूपी विशुद्धता को घातती हैं।।83।। ज्ञान के जानने वाले मनुष्यों को सदा क्रम से पाषाणादि सदृश, भूमिभेद सदृश, रजोभेद सदृश और जल रेखा सदृश के भेद से चार प्रकार का

क्रोध जानने योग्य हैं।।84।। लोक में चतुर्वर्ग रूपी फल को रोकने के लिए आगल के समान जो मान है वह शिलास्तम्भसम, अस्थिसम, काष्ठसम और लतासम के भेद से चार प्रकार का माना गया है।।85।। सन्मार्ग की विरोधिनी माया भी वंशमूलसम, मेषशृङ्गसम, गोमूत्रसम ओर चामरसम के भेद से चार प्रकार की है।।86।। समीचीन संकल्प को नष्ट करने वाला लोभ भी कृमिरागसम, नीलीसम, कर्मदसम और हरिद्रासम के भेद से चार प्रकार का है।।87।। माया और लोभ कषाय राग तथा क्रोध और मान कषाय द्वेष इस प्रकार राग द्वेष का द्वन्द्व है। इन राग द्वेष के कारण ही आत्मा दुखी होता है।।88।।

प्रकृति बन्ध पहला, स्थितिबन्ध दूसरा, अनुभाग बन्ध तीसरा और प्रदेश बन्ध चौथा इस प्रकार बन्ध चार प्रकार का माना जाता है।।89।। ज्ञानीजनों को योग प्रकृति और प्रदेश बन्ध के तथा कषाय स्थिति और अनुभाग बन्ध के हेतु जानना चाहिए।।90।। ज्ञानावरण के पाँच भेद हैं, दर्शनावरण के नौ भेद हैं और वेदनीय कर्म के दो भेद कहे गये हैं।।91।। मोहनीय के अठ्ठाईस, आयु के चार और नाम कर्म के तेरानवे भेद माने गये हैं।।92।। गोत्र कर्म के दो भेद हैं, अन्तराय कर्म के पाँच भेद हैं और सबके मिलकर एक सौ साठ भेद जानना चाहिए।।93।।

अथानन्तर मोक्षाभिलाषी जीव को कर्म प्रकृतियों के बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता ये चार भेद ज्ञातव्य हैं—जानने के योग्य हैं।।94।। प्रथम–द्वितीय गुणस्थान में क्रम से चार का वर्ग अर्थात् सोलह और पाँच का वर्ग अर्थात् पच्चीस, अव्रतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में दश, संयतासंयतादि तीन गुणस्थानों में क्रम से चार, छह और एक, अपूर्वकरण गुणास्थान में दो, तीस और चार मिलाकर छत्तीस, अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में पाँच, सूक्ष्म साम्पराय में सोलह और सयोगी जिनमें एक साता वेदनीय कही जाती है। ये प्रकृतियाँ इन गुणस्थानों में ही क्रम से बन्ध को प्राप्त होती हैं उपरितन गुणस्थानों में इनकी बन्धव्युच्छित्ति होती है।।95–97।।

तदनन्तर पाँच, नौ, एक, सत्तरह, आठ, पांच, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह, तीस और बारह ये प्रकृतियाँ क्रम से अयोगि केवली पर्यन्त गुणस्थानों में उदय को प्राप्त होती हैं अर्थात् अग्रिम गुणस्थानों में इनकी उदयव्युच्छित्ति होती है।।98–99।।

तदनन्तर पांच, नौ, एक, सत्तरह, आठ, आठ, चार, छह, छह, एक, दो, सोलह और उनतालीस ये प्रकृतियाँ प्रारम्भ से लेकर सयोगि जिन पर्यन्त गुणस्थानों में क्रम से उदीरणा को प्राप्त होती हैं अर्थात् उपरितन गुणस्थानों में इनकी उदीरणा व्युच्छित्ति हो जाती है।।100–101।।

मिथ्यात्व, सम्यगमिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृति और विसंयोजना को प्राप्त होने वाली अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ, ये सात प्रकृतियाँ अव्रत सम्यग्दृष्टि को आदि लेकर अप्रमत्त संयत तक गुणस्थानों में से किसी एक में क्षय को प्राप्त होती हैं भावार्थ-उन सात प्रकृतियों में से सर्वप्रथम अनन्तानुबन्धी चतुष्क का अनिवृत्तिकरण रूप परिणामों के अन्त समय में एक ही बार विसंयोजन–अप्रत्याख्यानावरणादि रूप परिणमन होता है तथा अनिवृत्तिकरणकाल के बहुभाग को छोड़कर शेष संख्यातवें एक भाग में पहले समय से लेकर मिथ्यात्व, मिश्र तथा सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय होता है।।102।। तिर्यंच आयु, नरक आयु और देवायु अपनी अपनी गति में वहाँ उत्पन्न होने वाले जीवों के नियम से क्षय को प्राप्त होती है। भावार्थ–तिर्यंच आयु का अस्तित्व पञ्चम गुणस्थान तक और नरक तथा देवायु का अस्तित्व चतुर्थ गुणस्थान तक ही रहता है आगे नहीं।।103।। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में क्रम से सोलह, आठ, एक, एक, छह, एक, एक, एक, एक और सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान में एक प्रकृति नाश को प्राप्त होती है। भावार्थ–अनिवृत्तिकरण के नौ भागों में क्रम से सोलह आठ आदि प्रकृतियों का क्षय होकर उनकी सत्वव्युच्छित्ति होती है।।104।। क्षीणमोह गुणस्थान में सोलह और अयोग केवली के उपान्त्य समय में बहत्तर तथा अन्तिम समय में तेरह प्रकृतियां क्षय को प्राप्त होती हैं।।105।।

प्रारम्भ के दो कर्म--ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा मोह और अन्तराय ये चार कर्म जीवों को दुःख देने वाले हैं। शेष चार कर्म सुख दुःख के कारण उपस्थित करते हैं।॥06॥ इन कर्म प्रकृतियों से विविध पर्यायों को धारण करने वाले जीव के जो पांच परिवर्तन होते हैं उन्हें संसार से भयभीत मनुष्यों को संसार जानना चाहिये। भावार्थ--कर्मों के कारण जीव नानारूप धारण करता हुआ द्रव्य क्षेत्र काल भव और भाव इन पांच परिवर्तनों को करता है। उन परिर्वतनों का करना ही संसार है।॥07॥ जितना कुछ पुद्गल द्रव्य है उस सब को एक जीव ने द्रव्य परिवर्तन में अपने आपके द्वारा अनेकों बार ग्रहण करके छोड़ा है।॥08॥ इस जीव ने क्षेत्र परिवर्तन के बीच तीनों लोकों के समस्त प्रदेशों में बार-बार जन्म मरण किया है।॥09॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में वे समयावलियाँ नहीं हैं जिनमें काल परिवर्तन के बीच यह जीव मरण कर उत्पन्न नहीं हुआ हो।॥10॥ भाव परिवर्तन में इस जीव ने असंख्यात लोक प्रमाण समस्त भावों को बहुत बार ग्रहण कर छोड़ा है।॥11॥ इसी प्रकार भवपरिवर्तन के बीच यह जीव नर नारक तिर्यंच और देवों में भी अनेकों बार मर कर उत्पन्न हुआ है।॥12॥ इस प्रकार यह बन्धरूप संसार सार रहित जानना चाहिये। यह संसार अभव्य जीवों का अनादि और अनन्त होता है तथा भव्य जीवों का अनादि होने पर भी सान्त होता है। तत्त्वार्थ की श्रद्धा रखने वाले जीव भव्य हैं और तत्त्वार्थ से द्वेष रखने वाले अभव्य हैं।॥13-114॥

अथानन्तर आस्रव का निरोध हो जाना ही जिसका एक लक्षण है वह संवर माना गया है। भाव संवर और द्रव्य संवर के भेद से वह दो प्रकार का कहा जाता है।॥15॥ संसार की कारणभूत क्रियाओं की निवृत्ति होना भावसंवर है और द्रव्यकर्मों के आस्रव का अभाव होना द्रव्य संवर कहलाता है।॥16॥ तीन गुप्तियाँ, पाँच उत्कृष्ट समितियाँ, दश

धर्म, बारह अनुप्रेक्षाएं, बाईस परीषहों का जीतना, और पांच चारित्र ये संवर के हेतु हैं। संसार का विच्छेद करने के लिए उद्यत मुमुक्षु जनों को इनकी निरन्तर भावना करना चाहिये।।17–19।। सम्यक् प्रकार से योगों का निग्रह करना सत्पुरुषों के द्वारा गुप्ति कही जाती है। उसके मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति ये तीन भेद कहलाते हैं।।20।।

सम्यक्—प्रमाद रहित प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। इसके पांच भेद जानना चाहिये—ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और उत्सर्ग।।21।। क्षमा, मार्दव, शौच, आर्जव, सत्य, संयम, ब्रह्मचर्य, तप, त्याग और आकिंचन्य ये दश धर्म कहलाते हैं।।22।। शत्रुओं के कुवचन आदि के द्वारा कलुषता के कारण रहते हुए भी मुनि को जो कलुषता उत्पन्न नहीं होती है वह सत्पुरुषों से विवक्षित क्षमा है।।23।। जाति आदि आठ प्रकार के अंहकारभाव का नाश होना निश्चय से मार्दव है और लोभ से सर्वप्रकार की निवृत्ति होना निर्मल पुरुषों के द्वारा शौंच धर्म कहा जाता है।।24।। अभिमान का निराकरण करना तथा योगों की कुटिलता का न होना आर्जव है। उत्तम सत्पुरुषों के साथ निर्दोष वचन बोलना सत्य कहलाता है।।25।। प्राणिघात तथा इन्द्रिय विषयों का परिहार करना मुनियों का संयम माना गया है तथा गुरुकुल में अर्थात् दीक्षाचार्य आदि के साथ सदा निवास करना ब्रह्मचर्य कहलाता है।।26।। कर्मों का क्षय करने के लिये जो अत्यधिक तपा जाता है वह तप माना गया है। उत्तम धर्म तथा शास्त्र आदि का देना त्याग कहा गया है।।27।। अपने शरीरादिक की अपेक्षा न कर मुनि की जो ममता रहित प्रवृत्ति है वह समीचीन आकिञ्चन्य धर्म कहा गया है।।28।।

रूपादिक की अनित्यता है, धर्म से अतिरिक्त कोई दूसरा शरण नहीं है, संसार से बढ़ कर दूसरा कष्ट नहीं है, मैं अकेला ही सुख दुःख भोगता हूँ, मैं मूर्ति रहित हूँ तथा शरीर से भिन्न हूँ, इसी प्रकार शरीर अपवित्र है, कर्मों का आस्रव हो रहा है, गुप्ति आदि संवर के उपाय हैं,

तप से कर्मों की निर्जरा होती है, सुप्रतिष्ठिक–मोंदरा–ठौना के समान यह लोक स्थित है, जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहा हुआ यह उत्कृष्ट धर्म ही जगत् के हित के लिए है तथा जीव को परमार्थ से आत्मज्ञान–आत्मानुभूति होना श्रद्धा आदि की अपेक्षा भी दुर्लभ है, इस प्रकार इन सबके बार–बार चिन्तवन करने को अनुप्रेक्षा कहते हैं।।129–132।। विद्वज्जनों को संवर के मार्ग से च्युत नहीं होने तथा कर्मों की निर्जरा के लिए सदा क्षुधा तृषा आदि परिषह सहन करना चाहिए।।33।।

सामायिक नामक प्रथम चारित्र को दो प्रकार का कहते हैं–एक अनियत काल से सहित है और दूसरा नियत काल से युक्त है। भावार्थ–जिसमें समय की अवधि न रखकर सदा के लिए समताभाव धारण कर सावद्य कार्यों का त्याग किया जाता है वह अनियतकाल सामायिक चारित्र है और जिसमें समय की सीमा रख कर त्याग किया जाता है वह नियतकाल सामायिक चारित्र है।।34।। जिसमें छेद विभाग पूर्वक हिसादि पापों से निवृत्ति की जाती है अथवा व्रतभङ्ग होने पर उसका निराकरण पुनः शुद्धता पूर्वक व्रत धारण किया जाता है वह छेदोपस्थापना नामका चारित्र कहा जाता है। भावार्थ–छेदोपस्थापना शब्द की निरुक्ति दो प्रकार से होती है 'छेदेन उपस्थापना छेदोपस्थापना' अर्थात् मैं हिंसा का त्याग करता हूँ, असत्य भाषण का त्याग करता हूँ इस प्रकार विभाग पूर्वक जिसमें सावद्य कार्यों का त्याग होता है वह छेदोपस्थापना चारित्र है। अथवा 'छेदे सति उपस्थापना छेदोपस्थापना' अर्थात् व्रत में छेद–भङ्ग होने पर पुनः अपने आपको व्रताचरण में उपस्थित करना छेदोपस्थापना है ।।35।। परिहार विशुद्धि से–तपश्चरण से प्राप्त उस विशिष्ट शुद्धि से जिसके कारण जीव राशि पर चलने पर भी जीवों का घात नहीं होता है, होने वाला चारित्र परिहार विशुद्धि नामका चारित्र कहलाता है। अतिशय सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त हुयी

कषाय से जो होता है वह सूक्ष्मसांपराय नामका चारित्र है।॥36॥ चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय अथवा उपशम से आत्मा के यथार्थ स्वरूप में जो अवस्थिति है वह यथाख्यात चारित्र कहलाता है।॥37॥

तपसा निर्जरा को जानना चाहिये अर्थात् तप के द्वारा संवर और निर्जरा दोनों होते हैं। बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से वह तप दो प्रकार का है तथा प्रत्येक के छह–छह भेद होते हैं।॥38॥ संयमादि की सिद्धि के लिये, राग का विच्छेद करने के लिए और कर्मों का क्षय करने के लिये जो आहार का त्याग किया जाता है वह अनशन नामका प्रथम बाह्य तप है।॥39॥ दोषों का प्रशमन, संतोष तथा स्वाध्याय आदि की प्रसिद्धि के लिये सत्पुरुषों द्वारा दूसरे अवमोदर्य (निश्चित आहार से कम आहार लेना) तप की प्रशंसा की जाती है।॥40॥ 'मैं एक घर तक या दो घर तक आहार के लिए जाऊँगा' इस प्रकार मन को रोकने वाला संकल्प करना वृत्ति परिसंख्यान नामका तृतीय तप कहलाता है।॥41॥ स्वाध्याय की सुख पूर्वक सिद्धि के लिए तथा इन्द्रियों का दर्प शान्त करने के लिए जो घी दूध आदि रसों का परित्याग किया जाता है वह आर्य पुरुषों द्वारा रस परित्याग नामक चतुर्थ तप निश्चित किया जाता है।॥42॥ पर्वत की गुफा आदि शून्य स्थानों में जो अच्छी तरह शयनासन किया जाता है वह साधु का विविक्त शय्यासन नामका पञ्चमतप जानना चाहिए।॥43॥ तीन काल–ग्रीष्म, वर्षा और शीत काल सम्बन्धी योगों के द्वारा उपवासादि के समय साधुओं के द्वारा जो उद्यम किया जाता है वह कायक्लेश नामका छठवां प्रशंसनीय तप कहा गया है।॥44॥

गुरु के लिए अपने प्रमाद का निवेदन करना आलोचना है। दोषों को प्रकट कर उनका प्रतिकार करना प्रतिक्रमण कहा गया है।॥45॥ गुरुजनों की संगति प्राप्त होने पर अपराध को शुद्ध करना तदुभय–आलोचना और प्रतिक्रमण है। आहार तथा उपकरणादिक का पृथक् करना विवेक है।॥46॥ कायोत्सर्ग आदि करना व्युत्सर्ग कहलाता

है। उपवास तथा ऊनोदर आदिक तप कहा जाता है। पक्ष आदि समय की अवधि द्वारा दीक्षा का छेदना छेद होता है। एक पक्ष तथा एक मास आदि के लिए संघ से अलग कर देना परिहार है और पुनः दीक्षा देना उपस्थापन कहलाता है। इस प्रकार यह नौ प्रकार का प्रायश्चित तप ज्ञानीजनों को इष्ट है।।147–149।।

मोक्ष के लिए आगम का अभ्यास स्मरण तथा ग्रहण आदिक निरन्तर बहुत सम्मान से करना ज्ञानविनय माना गया है।।150।। शङ्का आदि दोषों से रहित तत्त्वार्थ की वास्तविक रुचि होना सम्यक्त्व विनय है ऐसा विनय के इच्छुक जनों के द्वारा कहा जाता है।।151।। चारित्र के धारक मनुष्यों को शुद्ध हृदय से चारित्र में समाहित करना—वैत्यावृत्य के द्वारा स्थिर करना चारित्र से अलंकृत आत्मा वाले मुनियों द्वारा चारित्र विनय जानना चाहिए।।152।। आचार्य आदि के आने पर भक्तिपूर्वक उठकर उनके सामने जाना तथा प्रणाम आदि करना उपचार विनय है। इस प्रकार यह चार प्रकार का विनय तप है।।153।।

अपने शरीर, वचन अथवा अन्य द्रव्य के द्वारा दुःखी जीव के दुःख का प्रतिकार करने को विद्वज्जन वैयावृत्त्य कहते हैं।।154।। वह वैय्यावृत्य आचार्य आदि विषय के भेद से दश प्रकार का होता है ग्लानि का निराकरण करने तथा संसार का छेद करने के लिए इस तप की निरन्तर भावना करना चाहिए।।155।।

ग्रन्थ, अर्थ और दोनों का देना वाचना है। संशय का छेद करने के लिए परस्पर पूछना पृच्छना है।।156।। निर्णीत अर्थ का मन में बार बार अभ्यास करना अनुप्रेक्षा है ऐसा अनुप्रेक्षा में संलग्न मुनियों के द्वारा कहा जाता है।।157।। उच्चारण की शुद्धि पूर्वक पाठ करना आम्नाय कहलाता है क्षेत्र तथा कालादिकी शुद्धि को लेकर धर्मकथा आदि का यथायोग्य सर्वत्र अनुष्ठान करना—उपदेशादिक देना धर्मोपदेश कहलाता है। इस प्रकार यह पांच तरह का स्वाध्याय कहा गया है।।158–159।।

बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करना व्युत्सर्ग कहलाता है। क्षेत्र आदिक बाह्य परिग्रह और क्रोधादिक अन्तरङ्ग परिग्रह जानना चाहिए।।60।।

उत्कृष्ट संहनन के धारक मुनि का अन्तर्मुहूर्त तक किसी एक पदार्थ में जो चिन्ता का निरोध होता है उसे श्रेष्ठ विद्वान् ध्यान कहते हैं।।61।। वह ध्यान आर्त्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल इस तरह चार प्रकार का होता है। इनमें पहले के दो ध्यान—आर्त्त ओर रौद्र ध्यान संसार के कारण हैं। तथा आगे के दो ध्यान—धर्म्य और शुक्ल ध्यान मुक्ति के कारण हैं।।62।। पहला आर्तध्यान चार प्रकार जानना चाहिए। अनिष्ट पदार्थ का समागम होने पर उसे दूर करने के लिए स्मृति का बार-बार उस ओर जाना अनिष्ट संयोगज आर्त्तध्यान कहलाता है।।63।। इष्ट वस्तु का वियोग होने पर उसके संयोग के लिए स्मृति का बार-बार उस ओर जाना इष्ट वियोगज आर्तध्यान है। वेदना—पीड़ा सहित मनुष्य का उस पीड़ा को दूर करने के लिए बार-बार उपयोग जाना वेदनाजन्य आर्त्तध्यान है और आगामी भोगों की इच्छा होना निदान नामका आर्त्तध्यान है। इस प्रकार विद्वानों ने आर्त्तध्यान के चार भेद कहे हैं।।64।। अत्यक्त, देशविरत और प्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती जीव आर्त्तध्यान के प्रयोजन हैं। मिथ्यादृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती जीव अत्यक्त शब्द से कहे गये हैं।।65।।

हिंसा, असत्यभाषण, चौर्य और परिग्रह के संरक्षण से जो ध्यान उत्पन्न होता है वह रौद्रध्यान कहलाता है। इस रौद्रध्यान के स्वामी अत्यक्त—प्रारम्भ को चार गुणस्थानों में रहने वाले जीव तथा श्रावक—पञ्चम गुणस्थानवर्ती जीव माने गये हैं।।66।।

आज्ञा, अपाय, विपाक और लोक संस्थान इनके विचय से जो ध्यान होता है वह चार प्रकार का धर्म्यध्यान कहा गया है।।67।। समस्त पदार्थों की सूक्ष्मता और अपनी जड़ता—अज्ञान दशा से आगम के अनुसार सम्यक् प्रकार से चिन्ता का निरोध होना आज्ञा विचय

धर्म्यध्यान है। भावार्थ—पदार्थ सूक्ष्म हों और अपनी अज्ञान दशा हो तब आगम में जो कहा है वह ठीक है ऐसा चिन्तवन करना आज्ञाविचय नामका धर्म्यध्यान है।॥68॥ खेद है कि ये मिथ्यादृष्टि जीव सन्मार्ग को न पाकर दुखी हो रहे हैं इस प्रकार सन्मार्ग के अपाय का चिन्तन करना अपाय विचय नामका धर्म्यध्यान है।॥69॥ इन कर्मों का ऐसा परिपाक अत्यन्त दुःसह है इस प्रकार विपाक—कर्मोदय का विचार करना विपाक विचय नामका धर्म्यध्यान है।॥70॥ यह जगत् ऊपर नीचे और समान धरातल पर इस प्रकार व्यवस्थित है ऐसा चिन्ता का जो निरोध करना है वह लोक विचय—संस्थान विचय नामका धर्म्यध्यान माना गया है।॥71॥

शुक्लध्यान के चार भेद हैं उनमें आदि के दो भेद पूर्वविद—पूर्वों के ज्ञाता मुनि के होते हैं और अन्त के दो भेद केवली के होते हैं। श्रेणी चढ़ने के पूर्व धर्म्यध्यान होता है और उसके बाद शुक्लध्यान माना जाता है। भावार्थ—कहीं कषायं का सद्भाव रहने से दशवें गुणस्थान तक धर्म्यध्यान और उसके बाद शुक्लध्यान माना गया है।॥72॥ जो पृथक्त्व वितर्क है वह पहला शुक्लध्यान कहा गया और जो एकत्व वितर्क है उसे दूसरा शुक्लध्यान जानना चाहिए।॥73॥ सूक्ष्म क्रियाओं में प्रतिपातन से जो होता है—काययोग की अत्यन्त सूक्ष्म परिणति रह जाने पर जो होता है वह सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति नामका तीसरा शुक्लध्यान कहलाता है।॥74॥ और समुच्छिन्न क्रियाओं में प्रतिपातन से—योग जन्य परिस्पन्द के सर्वथा नष्ट हो जाने से जो होता है वह समुच्छिन्न क्रिया प्रतिपाति नामका चौथा शुक्लध्यान कहा जाता है।॥75॥ पहला भेद तीन योग वालों के होता है, दूसरा भेद तीन में से किसी एक योग वाले के होता है, तीसरा भेद काययोग वाले के होता है और चौथा भेद अयोग केवली के होता है।॥76 जिसकी आत्मा ध्यान में लीन है ऐसे मुनि के पहले के दो ध्यान—पृथक्त्ववितर्क वीचार तथा एकत्व वितर्क होते हैं ये दोनों ध्यान

स्पष्ट ही एक आश्रय से होते हैं और वितर्क तथा वीचार से सहित रहते हैं। परन्तु दूसरा शुक्लध्यान वीचार से रहित होता है। वितर्क श्रुत कहलाता है। अर्थ, व्यञ्जन औरयोगों में जो परिवर्तन होता है। वह वीचार कहलाता है।।177–178।। द्रव्य और पर्याय अर्थ कहलाता है, व्यञ्जन वचन को कहते हैं, काय, वचन और मन का जो परिस्पन्द है वह योग कहलाता है और संक्रान्ति का अर्थ परिवर्तन है।।179।। चारित्र तथा गुप्ति आदि से संयुक्त मुनि को संसार की निवृत्ति के लिए शरीरादि की स्थिति का ध्यान करने का यत्न करना चाहिए।।180।। तदनन्तर जो समाहित–ध्यान योग्य मुद्रा से बैठकर द्रव्याणु अथवा भावाणु का ध्यान करता हुआ वितर्क–श्रुत की सामर्थ्य को प्राप्त होता है और द्रव्य अथवा पर्याय अथवा शरीर और वचन योग को पृथक् रूप से प्राप्त होने वाले मन के द्वारा कुण्ठित शस्त्र से महावृक्ष के समान मोहकर्म की प्रकृतियों का जो धीरे–धीरे उपशमन अथवा क्षपण करता है इस प्रकार ध्यान करने वाला वह मुनि पृथक्त्व वितर्क नामक शुक्लध्यान को धारण करने वाला होता है। भावार्थ–इस ध्यान में मोहजन्य इच्छा का अभाव हो जाने से अर्थ व्यञ्जन और योगों की सँक्रान्ति–परिवर्तन कां अभाव हो जाता है इसलिए जिस योग से आगम के जिस वाक्य या पद का ध्यान शुरू करता है उसी पर अन्तर्मुहूर्त तक रुकता है। यहाँ ध्यान करने वाला मुनि पर्याप्त बल तथा उत्साह से रहित होता है इसलिए जिस प्रकार कोई मनुष्य मोथले शस्त्र के द्वारा किसी बड़े वृक्ष को बहुत काल में छेद पाता है उसी प्रकार वह मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का धीरे–धीरे बहुत समय–दीर्घ अन्तर्मुहूर्त में उपशमन अथवा क्षपण कर पाता है। उपशम श्रेणी वाला मुनि उन प्रकृतियों का उपशमन करता है और क्षपक श्रेणी वाला क्षपण करता है।।181–183।। जिसने मोहकर्म के बन्ध को रोक दिया है, जो प्रकृतियों के ह्रास और क्षय को भी कर रहा है, जिसे

श्रुतज्ञान का अवलम्बन प्राप्त नहीं है, जिसने अर्थ–व्यञ्जन आदि की संक्रान्ति–परिवर्तन का त्याग कर दिया है तथा जिसका मन अत्यन्त निश्चल हो गया है। ऐसा मुनि क्षीण कषाय होता हुआ समीचीन ध्यान से निवृत्त नहीं होता–पीछे नहीं हटता। भावार्थ–एकत्व वितर्क नामक शुक्लध्यान के द्वारा यह मुनि क्षीण कषाय नामक उस गुणस्थान को प्राप्त होता है जहाँ से फिर पतन होना संभव नहीं होता है।।184–185।। इस प्रकार एकत्व वितर्क नामक शुक्लध्यान रूपी अग्नि के द्वारा जिसने घातिया कर्मरूपी बहुत भारी ईंधन को भस्म कर दिया है, वह तीर्थंकर हो चाहे सामान्य मुनि, केवलज्ञान को प्राप्त होता है।।186।।

यदि वेदनीय, नाम और गोत्र इन तीन अघातिया कर्मों की स्थिति आयु कर्म की स्थिति से अधिक हो तो उनका समीकरण करने के लिए वह समुद्घात करता है।।187।। यदि चारों अघातिया कर्म समान स्थिति से सहित हैं तो सूक्ष्म काययोग का अवलम्बन लेकर वे केवली तृतीय शुक्लध्यान का चिन्तन कर उसके अनन्तर चतुर्थ शुक्लध्यान को प्राप्त होते हैं। चतुर्थ शुक्लध्यानके धारक केवल अयोगी–योग रहित होते हैं। और परम यथाख्यात चारित्र से अत्यधिक शोभायमान होते हैं।।188–189।। तदनन्तर सिद्ध होते हुए पूर्व प्रयोग, असङ्ग, बन्ध विच्छेद अथवा उस प्रकार के स्वभाव से निर्वाण को प्राप्त होते हैं।।190।। वहाँ वे सिद्ध संपूर्ण–अनन्त ज्ञान दर्शन वीर्य और सुख से सहित होते हैं, नित्य होते हैं, निरञ्जन–कर्मकालिमा से रहित होते हैं, सर्वोत्कृष्ट पर्याय से युक्त होते हैं और सम्यक्त्व आदि आठगुणों से सहित होते हैं।।191।। वहाँ उनके वे गुण असत्पूर्व नहीं थे अर्थात् ऐसे नहीं थे कि पहले न हों नवीन ही उत्पन्न हुए हों किन्तु द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा शक्तिरूप से अनादिकाल से विद्यमान थे। तथा ऐसे भी नहीं थे कि पहले विद्यमान हों अर्थात् पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा गुण अपनी नवीन पर्याय के साथ ही प्रकट

हुये थे। सामान्यरूप से समस्त विकारों का अभाव होने से उत्पन्न हुये थे, स्वाभाविक विशेषता को लिये हुये थे तथा अभूतपूर्व थे।।92।। निर्जरा का हेतु तप है और मोक्ष का लक्षण पहले कहा जा चुका है इस प्रकार इन्द्र के लिये यथार्थ धर्म का उपदेश देकर वे शान्ति जिनेन्द्र विरत हो गये—रुक गये।।93।।

तदनन्तर इच्छा से रहित शान्ति जिनेन्द्र जगत् के हित के लिए विहार में प्रवृत्त हुये। यह ठीक ही है क्योंकि सूर्य किरणों के द्वारा अन्धकार के समूह को नष्ट कर जो उदित होता है उसका वह स्वभाव ही है।।94।। उस समय पृथिवी आनन्द के भार से नम्रीभूत भव्य जीवों के समूह को धारण करने के लिये मानों असमर्थ हो गयी थी अथवा जिनेन्द्र देव की अपरिमित महाप्रभाव रूपी संपदा को मानों देखना चाहती थी इसलिये चंचल हो उठी थी।।95।। धन का संरक्षण करने से वैयाकरण मुझे व्यर्थ ही धनद कहते हैं सच्चे धनद ते ये शान्ति जिनेन्द्र हैं इस प्रकार उनके मात्सर्य से ही मानों धनद—कुबेर लोक में सब ओर धन का वितरण कर रहा था।।96।। प्रणाम से नम्रीभूत मुकुटों की प्रभा से जो समस्त आकाश को असमय में बिजली रूपी मालाओं से तन्मयता को प्राप्त करा रहे थे ऐसे समस्त देव प्रकट हो गये।।97।। चतुर्णिकाय के देवों से व्याप्त पृथ्वी उस समय 'विश्वम्भरा' सब को धारण करने वाली, इस सार्थक नाम से युक्त हो गयी थी। उन देवों के द्वारा उच्चारण किये हुये जोरदार जय जयकार के शब्द ने समस्त दिशाओं को शब्दायमान कर दिया था।।98।। उस समय भक्ति पूर्वक अपने हाथ से मङ्गल द्रव्यों को धारण करने वाली अपनी स्त्रियों से जो सहित था तथा उस समय के योग्य निर्मल वेष आदि भाव से युक्त था ऐसा राजाओं का समूह संभ्रत सहित आ रहा था।।99।। त्रिलोकीनाथ शान्ति जिनेन्द्र के चारों ओर से लोगों को हटाने के लिये जितेन्द्रिय इन्द्र द्वारपालपने को

प्राप्त हो लीला पूर्वक छड़ी को घुमाता हुआ खड़ा था।।200।। दर्पणतल की उपमा से सहित, प्रजाओं के मनोरथ को पूर्ण करने वाली दिव्य भूमि उस समय ऐसी जान पड़ती थी मानों प्रभु की महिमा से, बीते हुए उत्तम भोग भूमि को फिरसे धारण कर रही हो।।201।। आकाश से सभी ओर पड़ती हुई सौमनसवृष्टि–पुष्पवृष्टि को देखकर ही मानों समस्त जगत् नीरोग और वैरबन्ध से रहित होता हुआ सुमन–पुष्प के समान आचरण कर रहा था। (पक्ष में प्रसन्न चित्त हो रहा था)।।202।।

तदनन्तर आकाश में खिले हुए हजारों सुवर्ण कमलों की जो आगे पीछे दो पंक्तियाँ थीं उनके बीच में वह पद्मयान प्रकट हुआ जो हजारों सुन्दर कमलों से सहित था, पृथिवी रूपी स्त्री के कण्ठहार के समान जान पड़ता था, दैदीप्यमान कान्ति से युक्त था, पद्मराग मणियों से निर्मित था, नाना प्रकार के उज्ज्वल रत्नों से चित्र–विचित्र था, जिसकी प्रत्येक कलिका पर हर्षवश नृत्य करती हुई लक्ष्मी अधिरूढ़ थी, कुतूहल से युक्त इन्द्रों के नेत्र रूपी भ्रमर समूह से जो सेवित था, अपनी सुगन्ध से जिसने समस्त दिशाओं को सुगन्धित कर दिया था, जो आकाश और पृथिवी के अन्तराल में तिलक के समान जान पड़ता था, सब ओर एक योजन चौड़ा था, जिसकी कर्णिका पाव योजन प्रमाण थी, तथा जो उन शान्तिजिनेन्द्र के ही योग्य था।।203–206।।

तदनन्तर जो वीतराग थे, चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण थे, और शान्ति जिनेन्द्र के गुणों के समान प्रकाशमान थे ऐसे सारस्वत आदि आठ लौकान्तिक देव इन्द्र सहित आ कर तथा पूजा कर कहने लगे कि हे अतुल्य प्रताप के धारक! प्रभो! जय हो, प्रसन्न होओ, यह आपका लोक हित के उद्यम का समय आया है। ऐसा कहकर उन्होंने जगत् के स्वामी शान्तिप्रभु को नमस्कार किया तथा यह भी कहा कि हे लोकगुरो! यह एक क्रम है। भावार्थ–हे भगवन्! आप स्वयं लोकगुरु

हैं—तीनों लोकों के गुरु हैं इसलिये आपको कुछ बतलाने की बात नहीं है मात्र यह क्रम है—हम लोगों के कहने का नियोग मात्र है इसलिये प्रार्थना कर रहे हैं।।207–208।।

तदनन्तर भगवान् आगे स्थित पद्मयान पर क्रम से आरूढ होने के लिये उद्यत हुए। उस समय जिसका समुद्रसम्बन्धी जल रूपी वस्त्र खिसक रहा था ऐसी पृथिवी हर्ष से नृत्य करने लगी।।209।। 'अब यह शान्ति जिनेन्द्र विहार कर रहे हैं इसलिये समस्तलोक में शान्ति प्रवर्तमान हो' इस प्रकार की दिशाओं में घोषणा करता हुआ विशाल शब्द वाला प्रस्थान कालिक नगाड़ा शब्द कर रहा था।।210।। प्रमथ जाति के देवों के द्वारा हर्ष से प्रवर्तित गीत अट्टहास तथा स्तुतिरूप मङ्गलगानों के ऊँचे नीचे शब्दों से मिला हुआ वह नगाड़ा का शब्द तीनों लोकों के मध्य में व्याप्त हो गया।।211।।

मुख्य गन्धर्वों के द्वारा आकाश में बजाये जाने वाले बाजों के समूह के अनुसार चलने वाली देवाङ्गनाएं शरीर के योगों से सात्त्विकभावों को प्रकट करती हुई लीलापूर्वक नृत्य कर रहीं थीं।।212।। मुख्य किन्नरों का गान यद्यपि देवों ने बार–बार सुना था परन्तु उस समय वह पहले न सुने हुए के समान था इसीलिये वे उसे बड़ी सावधानी से सुन रहे थे। वह गान रक्त–लाल (पक्ष में राग रागिनीयों से युक्त) होनेपर भी भगवान् के यश को मध्य में धारण करने के कारण विशुद्ध–शुक्ल (पक्ष में उज्ज्वल) था।।213।। जो वन्दना करने वाले नन्दि जनों से सहित थे, भक्तिपूर्वक स्तुतिरूप मङ्गलों का उच्चारण कर रहे थे तथा समस्त लोक को जिन्होंने प्रकाशित कर रक्खा था ऐसे लौकान्तिक देव आगे चल रहे थे।।214।।

इनके अतिरिक्त जो अपने परिकर से युक्त थी तथा प्रीति वश स्वयं ही परमेश्वर–शान्ति जिनेन्द्र को कमल का छत्र लगाये हुयी थी

ऐसी लक्ष्मी देवी अपने सौभाग्य गुण से अन्य समस्त लोगों को लुभा कर स्थित थी।।215।। जो लोगों के मन को रमण करने वाले–लोकप्रिय विद्या गुण से अनुगत थी तथा चार प्रकार के निर्मल वचन रूपी विभूति से सहित थी ऐसी सरस्वती देवी आकर वचनों के स्वामी श्री शान्ति जिनेन्द्र की वचनों के द्वारा अर्चाकर रही थी।।216।। हे स्वामिन्! प्रसन्न होओ, हे देव! आप विजयी हों, हे नाथ! इधर पधारो इस प्रकार तत्तद्देश के राजा के साथ बार–बार कहता हुआ इन्द्र आगे–आगे चल रहा था।।217।।

तदनन्तर तीनों लोकों के स्वामियों के द्वारा सब ओर से जिनका निर्मल मङ्गलाचार किया गया था। ऐसे शान्तिप्रभु लोक के आभूषण स्वरूप उस वन्दनीय पद्मयान पर अच्छी तरह आरूढ थे।।218।। दिशाएं निर्मल हो गयी थीं, रत्न बरस रहे थे, आकाश में आनन्द भेरियाँ उच्च शब्द कर रही थीं तथा देदीप्यमान श्रेष्ठ रत्नों से सहित पृथिवी धान्य रूपी उत्तरीय–वस्त्र को धारण कर रही थी।।219।।

जो चारों ओर पृथिवी की धूलि को झाड़ रहे थे, दूर–दूर तक दिशाओं को सुगन्धित कर रहे थे, तथा चर अचर जीवों को बाधा नहीं पहुँचा रहे थे ऐसे पवन कुमार देव आगे–आगे प्रयाण कर रहे थे।।220। जो अपनी बिजली रूपी वधू को लीला सहित नचा रहा था ऐसे मेघकुमार देवों का समूह आगे–आगे नयनाभिराम पृथिवी को कल्पवृक्ष के फूलों से युक्त जल के द्वारा सींच रहा था।।221।। जो रंगोलियों की विविध रचनाओं से युक्त था, अनेक चित्रों से सजाया गया था, आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था, प्रेम से भरे नाना वेषों को धारण करने वाले लोग जहाँ आ रहे थे तथा जो धूलि से रहित था ऐसा मार्ग सुशोभित हो रहा था।।222।। मनुष्यों की प्रीति के लिये मार्ग के दोनों ओर अशोक, आम, सुपारी, ईख, केला, प्रियङ्गु और नारंगी के वृक्षों से सहित सुन्दर वन प्रकट हो

गये।।223।। वह मार्ग तीन योजन विस्तृत लक्ष्मी से सुशोभित हो रहा था और उसकी दोनों ओर की सीमान्त रेखाएं एक कोश चौड़ी थीं।।224।। वह मार्ग मङ्गल द्रव्यों से युक्त, खड़े किये हुए अनेक रत्नमय गगनचुम्बी तोरणों के द्वारा मेघरहित आकाश में भी नाना प्रकार के चित्र विस्तृत कर रहा था वह आश्चर्य की बात थी।।225।।

तदनन्तर व्यन्तर देवों ने आकाश में नाना प्रकार के फूलों से मनोहर दो योजन विस्तार वाला वह पुष्प मण्डल बनाया जो मनुष्यों और देवों के शरीरधारी पुण्य समूह के समान स्थित था।।226।। उस पुष्प मण्डप के बीच में एक ऐसा चँदेवा प्रकट हुआ जो गुच्छों से बना हुआ था, जिसके बीच में किरणावली से सुशोभित मोतियों के गुच्छे लटक रहे थे, जो अनेक प्रकार के बेल बूटों से सहित था, जिसके मणिमय दण्डों को देव धारण किये हुए थे तथा जो अत्यन्त श्रेष्ठ और अनुपम था।।227।। हर्ष से भरे तथा हाथों में धारण किये हुए मङ्गल द्रव्यों से सुशोभित इन्द्र जिन्हें आकाश में और पृथिवी पर राजा डग डग पर आकर नमस्कार कर रहे थे ऐसे शान्ति जिनेन्द्र त्रिभुवन की विभूति के लिये—तीन लोक का गौरव बढ़ाने के लिये उस पुण्य मण्डल के भीतर विहार कर रहे थे।।228।। जिनके कर्मबन्धन शिथिल हो गये हैं जो बड़ी-बड़ी ऋद्धियों के धारक हैं तथा जिनकी बुद्धि का अभ्युदय देवों के द्वारा नमस्कृत है ऐसे तपस्वी मुनि उन शान्ति जिनेन्द्र के पीछे उस प्रकार चल रहे थे जिस प्रकार अन्धकार को नष्ट करने वाले चन्द्रमा के पीछे शान्ताकार तथा शुभकान्ति से युक्त शुभ ग्रह चलते हैं।।229।।

शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान सुन्दर कान्ति से युक्त विजय पताकाएं उन प्रभु के आगे ऐसा नृत्य क़र रही थीं मानों अन्य वादियों को पराजित कर भगवान् के यशः समूह ही नृत्य कर रहे हों।।230।। मार्ग में इन्द्रों के द्वारा उठायी हुयी तथा मोतियों के समूह से

खचित रेशमी वस्त्र से निर्मित विजय पताका ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों मेघों के अन्त में चमकते हुए सुन्दर तारों से युक्त ऐरावत हाथी का मार्ग ही स्वयं आ गया हो।।231।।

जो भगवान् के मूर्त प्रताप और यश की राशि के समान थे ऐसे सूर्य और चन्द्रमा धर्म चक्र को आगे कर चल रहे थे।।232।। जो धूपघटों को धारण कर भगवान् के आगे–आगे चल रहे थे ऐसे अग्नि कुमार देव सुशोभित हो रहे थे तथा नागकुमार देवों के समूह द्वारा वह मार्ग फणामणियों की देदीप्यमान किरण रूपी दीपकों से प्रकाशित किया जा रहा था।।233।। हर्ष से सुन्दरता पूर्वक चलती हुयीं दिक्कन्याएं दिशाओं के चारों ओर लाई की अञ्जलियां बिखेर रही थीं और देवाङ्गनाओं के स्थूलस्तन वस्त्र के अञ्चलों को कंपित करने वाला पवन संसार को सुगन्धित करता हुआ बह रहा था।।234।। हीन इन्द्रिय वाले मनुष्यों ने भी शीघ्र ही पूर्णेन्द्रियपना प्राप्त किया था, निर्धन मनुष्यों ने उत्कृष्ट सम्पत्ति प्राप्त की थी, और परस्पर विरोधी मांसभोजी–हिंसकजीवों के समूह ने मित्रता की थी। यह ठीक ही है क्योंकि जिनेन्द्र की महिमा अचिन्त्य थी।।235।। इस प्रकार उन शान्ति विभु ने तपश्चरण के सोलह वर्ष सहित कुछ कम बीस हजार वर्षों तक भव्यजीवों को संबोधित करने के लिये बड़े वैभव के साथ चिरकाल तक बिहार किया।।236।।

अन्त में नम्रीभूतजनों को हर्ष उत्पन्न करने वाले शान्तिनाथ जिनेन्द्र ने जहाँ अजितनाथ आदि तीर्थंकरों ने निर्वाण प्राप्त किया था तथा जहाँ की बड़ी–बड़ी शिलाओं का समूह शिलाजीत से व्याप्त था ऐसा सम्मेदाचल प्राप्त किया।।237।। तदनन्तर जिन्होंने प्राणि समूह के बीच समीचीन मुनियों में धर्म का सार अच्छी तरह से स्थापित किया था तथा जिनका पवित्र शरीर कान्ति से तन्मय था ऐसे शान्तिप्रभु समस्त संसार के आभरणस्वरूप उस सम्मेदाचल पर समवसरण सभा को छोड़कर एक मास तक सम्पूर्ण आत्मवैभव सहित अपनी आत्मा में लीन

होकर विराजमान हुए अर्थात् उन्होंने एक मास का योग निरोध किया।।238।।

तदनन्तर श्रेष्ठ गुणों से सहित कृतकृत्य शान्तिजिनेन्द्र ने ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दशी के दिन प्रदोष समय के व्यतीत होने पर जब कि चन्द्रमा भरणी नक्षत्र के साथ योग को प्राप्त था, व्युत्सर्गतप—योग निरोध के द्वारा समस्त कर्मसमूह का क्षय कर शान्तभाव के लक्ष्मी द्वारा प्रसिद्ध उत्कृष्ट सिद्ध पद प्राप्त किया।।239।। इन्द्रादिक देव निर्वाणकल्याणक की पूजा के लिये उस श्रेष्ठपर्वत—सम्मेदाचल पर आये। यद्यपि भगवान् का शरीर बिजली की तत्काल सम्बन्धी रम्यता को प्राप्त हो गया—बिजली के समान तत्काल विलीन हो गया था तथापि अग्निकुमार देवों के इन्द्रों ने उनके शरीर का प्रतिनिधि बनाकर समीचीन सम्पदाओं की सिद्धि के लिये मुकुटों से निर्गत देदीप्यमान अग्नि शिखा की ज्वालारूप लाल कमलों के द्वारा उसकी पूजा की।।240।।

इस प्रकार महाकवि असग द्वारा विरचित शान्तिपुराण में भगवान् शान्तिनाथ के निर्वाण कल्याणक का वर्णन करने वाला सोलहवां सर्ग समाप्त हुआ।।16।।

कवि प्रशस्ति

पृथ्वी तल पर झुककर नमस्कार करते समय लगी हुयी मुनियों की चरणरज से जिसका मस्तक सदा पवित्र रहता था, जो मूर्तिधारी उपशमभाव के समान जान पड़ता था और शुद्धसम्यग्दर्शन से सहित था ऐसा पटुमति इस नाम से प्रसिद्ध एक श्रावक था।।1।। जो समस्त पर्वों के दिन सैंकड़ों उपवासों के द्वारा अपने कृश शरीर को और भी अधिक कृशता को प्राप्त करा रहा था ऐसा वह अनुपम बुद्धिमान् पटुमति सदा आहारदान आदि के द्वारा विपुल विभूति, विशाल पुण्य और कुन्द के फूल के समान शुक्ल यश का संचय करता था।।2।। उसकी वैरा नाम की स्त्री थी जो मुनियों के चतुर्विध संघ में सदा समान स्नेह से युक्त भक्ति को विस्तृत करती थी और पृथिवी पर उत्कृष्ट मूर्तिमती सम्यक्त्व की शुद्धि के समान जान पड़ती थी।।3।। निर्मल कीर्ति से युक्त उन दोनों के असग नामका पुत्र हुआ जो विद्वत् समूह में प्रमुख, चंन्द्रमा की किरणों के समान शुक्ल यश से सहित तथा व्याकरण शास्त्र रूपी समुद्र के पारगामी नागनन्दी आचार्य का शिष्य हुआ।।4।।

उस असग का एक जिनाप नाम का मित्र था जो भव्यजनों के द्वारा सेवनीय था, जिनधर्म में लीन था, पराक्रम से प्रसिद्ध होने पर भी परलोक–शत्रुसमूह (पक्ष में नरकादि परलोक) से डरता था और द्विजाधि नाथ–पक्षियों का राजा (पक्ष में ब्राह्मण) होकर भी विपक्षपात–पङ्खों के संचार से रहित (पक्ष में पक्षपात से रहित) था।।5।। उस पवित्र बुद्धि जिनाप की व्याख्यान शीलता और पुराण विषयक श्रद्धा को देख कर उसका बहुत भारी आग्रह होने पर असग ने कवित्वहीन–काव्य निर्माण की शक्ति में हीन होने पर भी इस प्रबन्ध–शान्तिपुराण की रचना की थी।।6।। उस असग ने उत्तम अलंकार और विविध छन्दों से युक्त वर्धमानचारित्र की रचना कर साधुजनों के प्रकृष्टमोह की शान्ति के लिये यह शान्ति जिनेन्द्र का पुराण रचा था।।7।।